अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का संदेशवाहक

सौर आषाढ़, ७ शक १८७९ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-३९ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, २८ जून, '५७

स्व० भारतन् कुमारप्पाजी

छपते-छपते हमें खबर मिली कि डॉ० भारतन् कुमारप्पाजी का देहांत आकस्मिक रूप से, शिरोधमनी फटने से, नयी देहली में ता० २५ को सवेरे हो गया ! कुमारप्पा-बंधुओं से और उनकी अनन्य सेवाओं से शायद ही कोई सार्वजनिक सेवक अपरिचित रहा हो ! गांधीजी के अन्यतम साथियों में से वे थे और अ० भा० ग्रामोद्योग-संघ के मंत्रियों में भी वे रह चुके हैं। वे गांधीवाद के प्रसिद्ध विद्वान थे। उनकी मृत्यु से देश की अपरिमित हानि हुई है। सारा सर्वोदय-परिवार इस दुःख में सहभागी है।

—संपादक

एकादश व्रतों के मौलिक साधक : बालक !

(महात्मा भगवानदीन)

बालक पैदाइशी **अहिंसक** होता है। अगर ऐसा न होता, तो कौवा न उससे रोटी छीन ले जाता और न साँप उसका दूध पी जाता और न मादा भेड़िया उसको पाल सकती।

बालक पैदाइशी **सत्यवादी** होता है। सत्यवादी की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उसके पास ऐसा कोई भेद या ऐसी कोई बात न हो, जिसे वह छिपा सके और बच्चा इस कसौटी पर पूरा उतरता है।

बालक पैदाइशी **अचौर्य-व्रतधारी** होता है; क्योंकि पेट भर जाने पर बची हुई चीज को ऐसे छोड़ कर चल देता है, मानो उसे उससे कोई सरोकार ही नहीं। गांधीजी के शब्दों में—जरूरत से ज्यादा खाना चोरी है ही।

बच्चा पैदाइशी **ब्रह्मचारी** होता है। इसलिए नहीं कि उसमें अभी वासना जाग्रत नहीं हुई होती, बल्कि इसलिए कि वह लड़के और लड़की में भेद ही नहीं करता, उसे सब जगह एक ब्रह्म दिखायी देता है।

बालक पैदाइशी **अपरिग्रही** होता है, तभी तो वह अपने कपड़ों के न मैला होने की परवाह करता है, न फट जाने की।

बच्चा पैदाइशी **श्रम-पसंद** होता है। अगर माँ-बाप रोकें नहीं, तो डेढ़-दो बरस की लड़की अपने हाथ से रोटी बनाने में जरूर हाथ जलाती और फिर भी रोटी बनाने से न रुके ! ढाई-तीन बरस का लड़का, अगर माँ-बाप रोकें नहीं, तो खुद ही अपने कपड़े धोये। यह दूसरी बात है कि एक टिक्की साबुन वह अपने एक ही कपड़े पर खर्च कर दे !

गांधीजी के अर्थों में बच्चा **अस्वाद-व्रतधारी** होता है। वह मीठा दूध पसंद नहीं करता। उसे मीठा दूध पीने की आदत डाली जाती है। वह नमकीन चीज पसंद नहीं करता। नमक खाना उसे सिखाया जाता है।

बच्चा पैदाइशी **अभय-व्रतधारी** होता है, वह न किसीको डराता है, न किसीसे डरता है। जितना भय उसमें है, वह प्रकृति की देन है। बच्चे के लिए ही जरूरी नहीं, हम सबके लिए वह जरूरी है। उतने भय के बिना हम जीवन को रक्षा नहीं कर सकते।

बच्चा पैदाइशी **सर्वधर्म-समभावी** होता है। उसे तो मारपीट कर दूसरे धर्मों से द्वेष सिखाना पड़ता है। फिर भी हिन्दू-मुसलमान और ब्राह्मण-मेहतर के बच्चे एक-दूसरे को आम चुसा करखाये बिना नहीं रह सकते !

बच्चा पैदाइशी **स्वदेशी-व्रतधारी** होता है, तभी तो वह माँ के दूध के सिवा और दूध या और चीज को मुँह बना-बना कर पीता है। वही भाषा सीखता है, जो उसकी माँ जानती होती है। उसी काट के कपड़े पहनता है, जिस काट को उसकी माँ पसंद करती है या आस-पास के बच्चे पहनते हैं।

बच्चा तो छूआछूत से इतना दूर है कि वह पैदा होने से पहले माँ की छुआछूत को भी खतम कर देता है ! क्योंकि आम तौर से बालक जनाने के लिए मेहतरानी आया करती है। गुडिया की तरह सजीं ये नर्सें तो तीन दिन से चली हैं।*

* शीघ्र प्रकाशित होने वाली 'माता-पिताओं से' पुस्तक से।—सं०

विश्वशांति का शक्ति-पुंज !

(विनोबा)

ग्रामदान का कार्य यशस्वी हो, तो दुनिया के शांति के शस्त्रागार में एक बड़ा शस्त्र ही दाखिल होगा। हिंसा के शस्त्रागार में ऊँचे-से-ऊँचे शस्त्र बन रहे हैं। वही प्रक्रिया शांति के शस्त्रागार में होनी चाहिए। उससे दुनिया की ताकत और आशा बढ़ेगी। आज तो दुनिया परेशान है। इतना सब निश्चित समझ गये हैं कि हिंसक शस्त्रों से मसले हल नहीं होंगे। जब मेरे पास शस्त्र रहें और आपके पास वे न हों, तो तब हिंसा से मसले हल हो सकते हैं। पर आज तो दोनों के पास शस्त्र हैं। तब मसले कैसे हल होंगे ? हिंसा पर का विश्वास भी उठ गया है, परंतु अहिंसा की निष्ठा पैदा नहीं हुई है। ऐसी डाँवाडोल परिस्थिति है। इस हालत में अहिंसा की शक्ति प्रज्वलित होगी, तो दुनिया को राह मिलेगी। आज दुनिया की बुद्धि ठिकाने से नहीं है। रेलवे-इंजिन वेग से दौड़ रहा है, पर उसको चलाने वाला भीतर नहीं है। ऐसी हालत में अगर सामने टूटा पुल हो, तब क्या होगा ? उसी तरह ऐटम, हाईड्रोजन आदि की शक्ति बढ़ रही है, परंतु उसको चलाने वाली बुद्धि ही नहीं है, इस वास्ते वह शक्ति मारक हो रही है। इस हालत में दुनिया के किसी कोने में भी कोई अहिंसक शक्ति पैदा होती है, तो कुल दुनिया का ध्यान उस तरफ खिंचता है।

भूदान की बहुत ज्यादा शक्ति प्रगट नहीं हुई है। परंतु उसमें यह बुद्धि है। ऐटम की शक्ति बुद्धिहीन तथा बलवत्तर है और भूदान के पास बुद्धिमत्ता की छोटी-सी शक्ति है। इससे ताकत बढ़ेगी, बुद्धि और शक्ति, दोनों प्रगट होंगी। हमने बहुत बार कहा है कि भूदान विश्वशांति के लिए वोट है। लेकिन जब से ग्रामदान शुरू हुआ है, तब से यह और आगे बढ़ा है। इसलिए इससे भी ज्यादा हम कहना चाहते हैं।

भूदान तो विश्वशांति के लिए वोट है, परंतु ग्रामदान विश्वशांति के लिए शस्त्र है ! इसी खयाल से आप इस आंदोलन की तरफ देखिये !

(परीमयुर, पालघाट, ५-६-'५७)

एक बार मानव के शरीर और आत्मा में वाद-विवाद की नौबत आ गयी। शरीर तमक कर बोला—"मैं तो जड़ हूँ-मिट्टी का पिंड ! मोह पैदा करने वाली चीजें देख भी नहीं सकता। फिर भला मैं पाप कैसे कर सकता हूँ ?"

आत्मा चुप कैसे रहती ? बोली—"मेरे पास पाप करने के साधन ही नहीं हैं, अतः मैं पाप कैसे कर सकती हूँ ? इंद्रियों के बिना भी कोई काम हो सकता है क्या ?"

भगवान् ने सुना, तो मुस्करा पड़े और बोले—"वस्तुतः तुम दोनों समान रूप से उत्तरदायी हो ! शरीर के कंधों पर जब आत्मा आ बैठती है, तब दोनों के सहयोग से ही पाप का जन्म होता है।" —टाल्स्टॉय

www.vinoba.in

भूदान और उसके आलोचक !

(१८ जून, '५७ के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के अग्रलेख से सादर)

यह बड़ी अद्भुत बात है कि कुछ समय पूर्व भूदान के जो प्रबल समर्थक थे, वे आज ऐसे समय उसके आलोचक होते जा रहे हैं, जब कि पहले के आलोचकों के मन में अब संशय कम रह गया है ! इसका कारण यह है कि आंदोलन के क्रांतिकारी स्वरूप के संबंध में लोगों को अब अच्छी प्रकार बोध हो गया है। भूदान-आंदोलन को प्राप्त सफलताएँ देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि भूमि-सुधार कानूनों के मार्ग में रोड़ा अटकाने के लिए ही इस प्रकार के आंदोलन का श्रीगणेश किया गया था ! अगर ठीक ढंग से इसको नैतिक समर्थन प्राप्त होता रहा, तो यह निश्चित है कि जिनके पास आज भूमि है, वे भूमिहीनों के साथ बाँट कर खाने के लिए तैयार होंगे। यह आज हम देख भी रहे हैं। अगर किसीके मन में कुछ शक रहा हो कि जनता इस आंदोलन में योगदान नहीं करेगी, तो उसे ग्रामदान में प्राप्त २००० ग्रामों पर दृष्टिपात करके जनता की स्पष्ट मनःस्थिति जान लेनी चाहिए। अर्थात् यह सही है कि ऐसा कोई दावा नहीं करता कि आंदोलन ने अपनी तमाम समस्याओं का, जिनसे उसका वास्ता पड़ा है, हल पा लिया है। स्वयं भूदान-सेवकों ने ही सर्वप्रथम यह स्वीकार किया है कि जिस गति से भूमिदान प्राप्त करने का कार्य हुआ या होता चलता है, उस गति से भूमि का पुनर्वितरण या उसके बाद के निर्माण-कार्य नहीं चल पाते। ग्रामदानी गाँवों में उन-उन गाँवों के निवासी अपनी समाज-व्यवस्था सहकारी आधार पर संघटित करने के प्रयास में आज भी सुनिश्चित मार्ग पर नहीं चल पाये हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भूदान की विचारधारा विफल हो गयी है ! वरन् यह कि भूदान की विचारधारा को अधिक विस्तृत बनाने और गहराई तक ले जाने की जरूरत है। किसी आंदोलन को अराजक या कम्यूनिस्ट कह कर उसकी उपेक्षा करने का अर्थ है कि इन लेबलों के नाम पर उसे बदनाम करना ! किसी ऐसे आंदोलन को दूर से भी कम्यूनिस्ट कैसे कहा जा सकता है, जब कि उसका आधार लोगों की नैतिकता को जाग्रत कर उनसे भूमि प्राप्त करना है ? और उसे अराजक भी कैसे कहा जाय, जब कि उसका आधार सहकारी समाज-व्यवस्था है ! यह आंदोलन लोकतंत्र में बहुत विश्वास नहीं करता, यह भी कैसे कहा जा सकता है ? संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था के संबंध में यह धारणा बना लेना कि सारा काम, सारी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान संसद के कानून से ही हो सकता है, बहुत ही संकीर्णता का परिचायक है। किसी नये कानून की मांग करने के पहले यह आवश्यक है कि अन्याय और दोष के विरुद्ध लोगों को जाग्रत किया जाय। किसी विशेष समस्या के संबंध में पहले से जनमत तैयार करना आवश्यक हो जाता है। इस आंदोलन की सबसे बड़ी खूबी यह है कि क्रांतिकारी भूमि-सुधार के संबंध में इसने वातावरण की सृष्टि कर दी है।

चाहे वह कृषि में सुधार के लिए नयी विधि और यन्त्रों के प्रयोग की बात हो, चाहे जोत की अधिकतम सीमा के निर्धारण का प्रश्न हो, चाहे चकबन्दी का प्रश्न हो और चाहे किसानों की काश्तकारी का अधिकार दिलाने की बात हो; कानून बना कर इस तरह की व्यवस्था करने के मार्ग में भूदान बाधक नहीं, सहायक ही होता है। यह आश्चर्य की बात है कि मगन भाई जैसे गांधीवादी को भी आन्दोलन की नैतिकता में सन्देह है ! यह बिल्कुल सच है कि इस आन्दोलन ने अपने को कांग्रेस का अंश घोषित करने से इन्कार कर दिया है ! किन्तु ऐसा ही तो गांधीजी के नेतृत्व में संचालित सर्वोदय-आन्दोलन ने भी किया था। जब तक कोई इस आन्दोलन के सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान है, तब तक वह किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हो, उसके सच्चे सेवक होने पर आपत्ति नहीं की जा सकती। क्या ऐसा भी कोई उदाहरण देखने में आया है, जहाँ भूदान-सेवकों ने किसीको दबा कर उससे भूमि ली हो ? अगर ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, तो यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि आन्दोलन में लगे लोग अहिंसा के मार्ग से अलग हो गये। सच बात यह है कि मालकियत छोड़ने की बात ही कुछ लोगों को बहुत पीड़ा पहुँचाती है—चाहे समझा-बुझा कर ही उन्हें इसके लिए क्यों न तैयार किया जाय ! कुछ लोगों की समझ में ही यह नहीं आता कि दलहीन आधार पर कोई आन्दोलन कैसे चल सकता है और आगे जाकर वह कैसे इतना समर्थ हो सकता है ! इस प्रकार के सब लोगों को अपना मन साफ कर लेना चाहिए। गांधी के बाद गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित इस एकमात्र आन्दोलन की निन्दा, गांधीजी की शब्दावली का प्रयोग करके ही, उन्हें नहीं करना चाहिए !

क्रान्तिकारी योजना

('हिंदुस्तान' के ता० १७ जून, '५७ के अग्रलेख से सादर)

विनोबाजी ने हमारी पंचवर्षीय योजना की एक कमजोरी की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने कहा है कि दुनिया पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं और परमात्मा न करे, यदि कोई बड़ा युद्ध छिड़ गया, तो क्या हमारी पंचवर्षीय योजना खड़ी रह सकेगी ?

अभी पिछले दिनों स्वेज नहर का संकट पैदा हुआ था और नहर में यातायात बन्द हो गया था। औद्योगिक विकास की योजनाओं को कार्यान्वित करने में हमारे वित्तीय साधनों पर भी भारी दबाव पड़ रहा है। हमको लोगों पर नये-नये कर लगाने पड़ रहे हैं। खर्च में काट-छाँट करनी पड़ रही है। विदेशों से गैरजरूरी आयात न करने और निर्यात-व्यापार बढ़ाने की फिक्र करनी पड़ रही है, युद्ध की कल्पना कोई अकल्पित कल्पना नहीं समझी जा सकती, कारण अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण काफी क्षुब्ध है और राष्ट्रों का तनाव किसी घटना को लेकर चरम सीमा को स्पर्श कर सकता है। विनोबाजी का कहना है कि हमको बुद्धिमान आदमी की तरह ऐसे किसी संकट का सामना करने के लिए पहले से ही तैयार होना चाहिए। उन्होंने सुझाया है कि हमको ऐसी योजना बनानी चाहिए कि हमारे देश का प्रत्येक गाँव अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के मामले में आत्म-निर्भर हो जाय। खेती की उपज इतनी बढ़ानी चाहिए कि हर गाँव के पास कम-से-कम दो-दो साल का अनाज एकत्र हो जाय। अगर गाँव में पर्याप्त अनाज नहीं होगा, तो विनोबाजी कहते हैं, भुखमरी को टाला नहीं जा सकेगा और युद्ध में मरने वालों की अपेक्षा भी भुखमरी से हमारे यहाँ अधिक आदमी मर सकते हैं। अतः हमको सबसे अधिक जोर खेती की उपज बढ़ाने पर देना चाहिए और अनाज के लिए विदेशों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। विनोबाजी का दूसरा सुझाव यह है कि गाँवों में जो कच्चा माल पैदा होता है, उसको गाँवों में ही पक्का बनाया जाय। इसके लिए हमको गाँवों में ग्रामोद्योगों को पनपाना होगा।

ग्रामोद्योगों का विकास इस तरह होना चाहिए कि खेती में जितनी शक्ति लगनी चाहिए, उतनी लगती रहे और ग्रामोद्योग गाँववालों की दूसरी बुनियादी जरूरतों को पूरा करें। हमारी योजना का मुख्य उद्देश्य गाँवों को उनकी बुनियादी जरूरतों के मामले में आत्म-निर्भर बनाना होना चाहिए। यदि हमारे पाँच लाख गाँव आत्मनिर्भर हो जाते हैं, तो हमारे आयोजन की यह बहुत भारी सफलता होगी।

विनोबाजी ने श्रमदान की एक अत्यन्त क्रान्तिकारी कल्पना देश के सामने रखी है। उनकी प्रेरणा पर देश में २५०० ग्राम भी ग्रामदान में प्राप्त हो चुके हैं। विनोबाजी कार्यकर्ताओं को यह प्रेरणा दे रहे हैं कि अब उन्हें अपनी सारी शक्ति ग्रामदान प्राप्त करने में लगा देनी चाहिए। इस प्रयास में उन्होंने सभी पार्टियों का सहयोग आमंत्रित किया है। ग्रामदान की प्रेरणा युग व धर्म की प्रेरणा है और उसके अनुकूल वातावरण बन रहा है। ग्रामदान में भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व का विसर्जन हो जाता है। एक गाँव में रहने वाले सभी लोग एक ग्राम-कुटुम्ब बनाने का निश्चय करते हैं। उसके साथ एक नवीन समाज-व्यवस्था का सूत्रपात किया जा सकता है। ग्रामदान के द्वारा ग्रामराज की नींव डाली जा सकती है, जिसमें ग्रामवासी प्रेम की डोर में बंध जायेंगे और एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर काम करेंगे। उस व्यवस्था में सबकी भलाई का खयाल रखा जायगा। उसमें किसीके भूखों मरने की नौबत नहीं आयेगी। विनोबाजी की श्रद्धा बहुत बड़ी है और वे उसकी छूत को फैला रहे हैं। किन्तु यह काम आसान हो या मुश्किल, करने लायक अवश्य है। श्री जयप्रकाश नारायण ने भी कहा है कि ग्रामदान के जरिये समाजवाद को कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है।

हमारे विचार से समाजवाद की स्थापना के लिए केवल भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अन्त करने से ही काम नहीं चलेगा। देश के आर्थिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इसे लागू करना होगा, किन्तु इस क्रान्ति की शुरुआत गाँवों से की जा सकती है। पहले ग्रामदान का विचार लोगों के गले उतारना होगा। विनोबाजी ने सरकार से, सामुदायिक योजना के कार्यकर्ताओं से, खादी और दूसरे रचनात्मक कार्यकर्ताओं से, राजनीतिक पार्टियों से—सभी से अपील की है कि वे ग्रामदान के अभियान का महत्त्व समझें और वह नयी समाज-रचना का जो अभूतपूर्व अवसर उपस्थित करता है, उसका लाभ उठायें। इसके द्वारा समाज की वर्तमान विकृतियों को दूर करने तथा आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति के कठिन ध्येय को सिद्ध करने की दिशा में ठोस प्रगति संभव हो सकेगी।

www.vinoba.in

सर्वोदय के बिजली-घर !

(विनोबा)

[परली केरल प्रांत में पालघाट जिले में है। यह सर्व-सेवा-संघ का दक्षिण भारत का एक केंद्र है। यहाँ ता० ७ जून को विनोबाजी ने वहाँ के कार्यकर्ताओं को निमित्त करके ऐसी सभी रचनात्मक संस्थाओं के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण निम्न भाषण किया।—सं०]

आज हम जिस स्थान में आये हैं, वह सर्वोदय का एक 'पावर हाउस' है, याने जहाँ से 'पावर' का निर्माण होता है और आसपास में उसका संचार होता है। बिजली सृष्टि में अव्यक्त रूप से सब दूर भरी है, परंतु उसको व्यक्त करने के लिए प्रयोग होते हैं, तो उसका दर्शन होता है और उससे लाभ मिलता है। सर्वोदय भी एक विचार के रूप में हरेक के हृदय में है। पर जो विचार अंदर निहित होता है, वह बाहर प्रगट करने के लिए कुछ प्रयोग करने होते हैं, ऐसे प्रयोगों के लिए कुछ स्थान देश में बनाने पड़ते हैं। वहाँ फिर प्रयोग होते हैं। उनसे कुछ अनुभव आता है और जो चीज हरेक के हृदय में पड़ी है, वह शक्ति के रूप में बन कर बाहर पड़ती है। आत्मा के अंदर सब प्रकार की शक्ति पड़ी है। बच्चे को आत्मा होता है, गौतम बुद्ध को भी आत्मा था। परंतु अन्य बच्चों के आत्मा की शक्ति प्रगट नहीं हुई, गौतम के आत्मा की शक्ति प्रगट हुई। तो सर्वोदय हरेक के हृदय में गुप्त रूप से विद्यमान है। जैसे हम शरीर में प्राणवायु के बिना नहीं रह सकते, वैसे सर्वोदय के बिना हमारा जीवन ही नहीं बनता। अव्यक्त रूपेण सर्वोदय सर्वत्र व्यापक भरा है। भला ऐसा कौन है, जो सबका भला न चाहता हो ! विचार के तौर पर सर्वोदय मान्य नहीं, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हो सकता।

परंतु विचार पर परिस्थिति के कारण मोह के आवरण आते हैं। वे मानते हैं कि सबका भला होना चाहिए। सबमें 'मैं' भी हूँ, तो मेरा भी भला होगा। परंतु वे सोचते हैं कि प्रथम मेरा भला होगा, तभी तो मैं सबकी सेवा कर सकूँगा ! मुझे खाना न मिले, तो मैं भूखों की सेवा क्या करूँगा ? इस तरह सर्वोदय-विचार सबमें होते हुए भी इस तर्क पर अपने-अपने स्वार्थ पर आकर सब स्थिर हो गये हैं। सारी समाज-रचना इस तरह चलती है। अच्छा व्यापारी भी, जो सबका भला चाहता है, यही सोचता है कि "हमारा जीवन-स्तर कायम रहे, उसके बाद ही सबकी सेवा होगी। जहाँ तक हो सकता है, वहाँ तक गरीबों की चिंता करेंगे, नहीं हो सकता, वहाँ लाचार हैं। परंतु अपने कुटुम्ब का, अपनी दूकान का, अपने साथियों का जीवन प्रथम उत्तम होना चाहिए, बाकी सबका तो धीरे-धीरे हो जायगा।" सरकारी अधिकारी भी सोचते हैं, हम "सेवक हैं, इस वास्ते हमारा तो अच्छा चलना चाहिए ! हमारा अच्छा चले, यह लोगों के ही हित में है। अतः पहले अधिकारियों का वेतन अच्छा होना चाहिए, बाद में हम सबका भला धीरे-धीरे करेंगे।"

अब हम खादीवाले क्या सोचते हैं ? वे सोचते हैं कि काफी त्याग हम करते हैं, बाजार में हमारी जो योग्यता मानी जायगी, उससे वेतन भी शायद हम कम लेते हैं। यह सही है कि जिनको हम मजदूरी देते हैं, उन्हें वह बहुत ही कम पड़ती है, पर किया क्या जाय ? अगर उनकी मजदूरी बढ़ा कर उनको जीवन-वेतन देंगे, तो खादी महँगी होगी। अतः इससे ज्यादा मजदूरी हम नहीं बढ़ा सकते। कोशिश करेंगे कि उनकी मजदूरी बढ़े। परंतु हम सबको तो पूरा ही मिलना चाहिए। उसके बिना हम सेवा कैसे कर सकेंगे ? इस तरह जितने सरकारी अधिकारी, व्यापारी, रचनात्मक कार्यकर्ता आदि सेवक हैं, वे सर्वोदय-विचार को समझते हुए भी अपना अच्छा होना चाहिए, अपने को प्रथम स्थान होना चाहिए, यह चाहते हैं।

इसलिए **कुछ सर्वोदयवादी अपवाद के तौर** पर ही देखने को मिलते हैं, जो वे अपने को पहला स्थान नहीं देते। वे हरेक घर में हैं। **उनको माता-पिता कहते हैं !** वे बच्चों का हित पहले देखते हैं। माता भी दलील दे सकती है कि बेटा ! आज दूध जरा कम है, तू मत ले, मुझे लेने दे। मैं कमजोर बन जाऊँगी, तो तेरा रक्षण कौन करेगा ? परंतु उसको तर्क से सर्वोदय ज्ञात नहीं हुआ है ! हृदय से ज्ञात हुआ है ! इसलिए वह कहती है, मेरा कुछ भी हो, बच्चे को पहले देना चाहिए। इस प्रकार की भावना माता-पिता में दीखती है। संभव है विद्वान्, पढ़े-लिखे इसे मूढ़ भावना कहें, फिर भी माता-पिता इस भावना से काम करते हैं और यह परंपरा चली ही आ रही है ! तो सर्वोदय की बिजली तब प्रगट होगी, जब ऐसे केंद्र-स्थान होंगे, जहाँ माता-पिताओं का दर्शन होता होगा।

संस्थाएँ माता-पिता बनें !

ऐसे स्थानों में आसपास की जनता को माता-पिता का दर्शन होना चाहिए। जब इस प्रकार का दर्शन होगा, तभी सर्वोदय का प्रचार सब दूर होगा और सर्वोदय की बिजली दुनिया में फैलेगी। ऐसे स्थान से जो अपेक्षा हमने रखी है, वह थोड़े में आपके सामने हम रखना चाहते हैं :

प्रथम ऐसी संस्थाएँ मातृ-पितृ स्थान हों। याने आस-पास के लोगों की सेवा की योजना वहाँ बने और तदनुसार वहाँ काम चलता हो। वह सेवा दो-तीन प्रकार से होगी। वह सारा कर्मयोग कहा जायगा।

पहली बात यह होनी चाहिए कि हम यह देखें कि जनता में जो खामियाँ आ गयी हैं, वे कैसे पूरी की जायँ। जन-जीवन सुखकर कैसा हो, इससे प्रयोग होने चाहिए। जिन साधनों से लोग काम करते हैं, उनमें भी सुधार होना चाहिए, जैसे कइयों को यह भी मालूम नहीं कि रसोई कैसे बनायी जाती है ! तो ऐसे लोगों को वह भी सिखायी जाय। स्वच्छता लोग नहीं जानते। तो किस प्रकार मल-मूत्र-शुद्धि की जा सकती है, उसका भी ज्ञान उनको देना चाहिए, वैसा इंतजाम भी हो ! लोगों के उद्योग-धंधे टूट गये हैं। वे खड़े कर सकते हैं, ऐसा दर्शन होना चाहिए। इस प्रकार के कार्य कर्मयोग का एक अंग होगा।

लोगों में कुछ कमियाँ हैं, कुछ दोष भी हैं। परंतु साथ-साथ उनमें गुण भी हैं। उन गुणों का हमको अभ्यास करना चाहिए। लोग निरंतर श्रमनिष्ठ रहते हैं। रोज काम करते हैं। इस प्रकार की शरीर-परिश्रम की आदत पढ़े-लिखे लोगों को नहीं होती और ऐसी संस्थाओं में अक्सर पढ़े-लिखे लोग ही काम करते हैं। तो वे सारे शरीर-परिश्रम-निष्ठ जीवन बितायें। शिक्षित लोग दूसरों को सिखाने जाते हैं, परंतु लोगों से उन्हें भी कुछ सीखना चाहिए, यह वे भूल जाते हैं। यह श्रम-निष्ठा हमको जनता से सीखनी चाहिए। उसका दर्शन ऐसे स्थानों में हो। यह कर्मयोग का दूसरा अंग हुआ।

त्रिविध कर्मयोग

तीसरा रूप यह होगा कि आसपास के लोगों के दुख हाथ में उठा कर उनके निवारण के काम करना चाहिए। हमने बहुत-सी ऐसी संस्थाएँ देखी हैं, जो आस पास के लोगों का खयाल ही नहीं करतीं। वे लोगों से काम लेकर कुछ मजदूरी तो दे देती हैं, पर लोगों की जो बुनियादी समस्याएँ हैं, वे हल करने का काम हमारी संस्थाएँ कर रही हैं, ऐसा कम दीखता है। जैसे यह ग्रामदान-भूदान का बुनियादी काम है, परंतु ऐसे प्रश्न हल करने का काम संस्थाएँ कर रही हैं, ऐसा दर्शन नहीं होता। इस तरह लोगों में जाकर उनकी समस्याओं का अध्ययन करके उन पर प्रभाव डालने का काम नहीं हो रहा है। वे मानते हैं कि समाज में परिवर्तन लाने का काम सरकार अपनी कानून की शक्ति से या तो एकाध राजनैतिक पार्टी अपने प्रभाव से कर सकती है, हम तो मामूली सेवा करने वाले हैं, इस वास्ते हमसे यह नहीं बनेगा !! इस प्रकार से रचनात्मक कार्यकर्ता अपने को हारे हुए, असमर्थ समझते हैं। हम उल्टा ही समझते हैं ! समाज-जीवन में परिवर्तन लाने की शक्ति न राजनैतिक पार्टियों में है, न सरकार में। वे ऊपर-ऊपर परिवर्तन ला सकते हैं, आंतरिक समाज-परिवर्तन करने की बात तो राजनीति को लोकनीति में परिवर्तन करने की शक्ति रखने वालों से ही बनेगी। तो ऐसे स्थानों से अपेक्षा है कि जन-समाज के परिवर्तन की क्रांतिकारी योजना यहाँ हो।

इस प्रकार त्रिविध कर्मयोग चलना चाहिए :

(१) लोक-जीवन की खामियाँ पूर्ण करने के प्रयोग यहाँ चलने चाहिए।

(२) शरीर-परिश्रमात्मक जोवन का कार्यक्रम होना चाहिए।

(३) लोक-स्थिति-परिवर्तन की क्रांतिकारी योजना चलनी चाहिए।

इसके अलावा और एक बात। ऐसे स्थानों में विचारों के अध्ययन-चिंतन की बहुत कमी रहती है। लोग काम करते चले जाते हैं, परंतु विचारों की गहराई नहीं रहती। परिणाम-स्वरूप कार्यकर्ताओं पर परिस्थिति का आक्रमण होता है, परिस्थिति के वे गुलाम बनते हैं। परिस्थिति को हम बदल सकते हैं, ऐसा विचार ही उन्हें नहीं आता। गहराई में नहीं जाते। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आदि जो अध्ययन-चिंतन चलना चाहिए, वह नहीं हो रहा है और इसके अभाव में शक्ति भी पैदा नहीं हो रही है ! अतः समुदाय तक जाते हैं, तो वहाँ खो जाते हैं !

www.vinoba.in

समुदाय को वश में करने जाते हैं, खुद ही समुदाय के वश हो जाते हैं। जैसे हमारे खादीवाले! वे वही व्यापारी कला चलाना चाहते हैं, पर वे यह नहीं सोचते कि हमको स्वतंत्र मार्केट भी बनाना है। बाजार में जो अनेक चीजें हैं, उनको हम रोक सकते हैं, ऐसी भावना इनमें नहीं है। गांधीजी ने खादी के लिए स्वतंत्र मार्केट शुरू किया था। खादी के लिए लोगों में वैसी ही निष्ठा हम पैदा करेंगे, यह वे नहीं सोचते। व्यापारी कहता है, सस्ता है तब तक खरीद लो, कल महँगा हो जायगा। हमको उल्टा कहना चाहिए कि महँगा है, तो खरीद लो, नहीं तो खादी सस्ती करनी पड़ेगी, उस हालत में मजदूरों को आपके हाथ से मदद नहीं पहुँचेगी! आज व्यापारी तरीके से सस्ती, सुंदर, फैशनेबुल खादी तैयार करने की कोशिश की जा रही है। पर लोगों को हम कहें कि खादी सुंदर, फ्रैशनेबुल नहीं बन सकती, पर यही कितनी सुंदर और मोटी है? कीमत भी ज्यादा है, आठ आना, दस आना गज की दरिद्री कीमत नहीं है। दो, ढाई, तीन रुपया गज की है। यह सुवर्ण है। सुवर्ण कभी सस्ता मिलता है? बाजार में जो सस्ता मिलता है, वह चोरी का माल है। मिल का कपड़ा सस्ता है, क्योंकि वह लोगों को बेकार बनाता है। बेकारों के पोषण का खर्च मिल पर बिठाइये और बाद में देखिये, कौन सस्ता है? इस तरह का चिंतन-मनन होना चाहिए।

सर्वोदय एक जीवन-शास्त्र है। इसलिए उसमें काफी गहराई है। उसकी सांपत्तिक, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक बाजूएँ हैं और उसके मूल में आध्यात्मिक शक्ति है। इन सबका अध्ययन, चिंतन, मनन करना चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है, "सततं कीर्तयन्तो माम्" मेरा कीर्तन सतत चलना चाहिए। तो तत्त्व-संकीर्तन हमेशा चलना चाहिए। इस तरह त्रिविध कर्मयोग और चिंतन होगा, तो बड़ा तेज प्रगट होगा।

ऐसे स्थानों में जो काम करते हैं, उनमें नम्रता भी चाहिए और सबके साथ घुल-मिल कर रहने की भी वृत्ति चाहिए। हमारा किसीके साथ बनता नहीं, यह शिकायत हम पूरे देश में सुनते हैं। यह राजनैतिक पार्टियों में चल सकता है, क्योंकि उनमें मत्सर है। परंतु सर्वोदय-कार्यकर्ताओं में भी यह दीखता है! **हम उनके दोष देखते हैं और वे हमारे दोष देखते हैं। दोष तो दुनिया में हैं ही। दोषों का संग्रह करेंगे, तो हृदय सारा विषैला बनेगा। हृदय सबके दोषों का संग्रह-स्थान होगा। उस बेचारे में तो दोष होगा एक ही, परंतु हमारे हृदय में तो दोषों का संग्रह ही हो जायगा! इसको हम आत्मघात से छोटा नाम नहीं देते! दूसरे के दोषों का दर्शन करना, यह बड़ी अंधता है।** शंकराचार्य ने कहा कि ये दोष देह-इंद्रिय-मन के साथ चिपके हुए हैं, तो उसमें क्या देखना है? रोज ही गुणों का परिवर्तन होता है। इतना ही नहीं, एक-एक दिन में कई बार परिवर्तन होता है। सुबह उठा, चित्त प्रसन्न है, तो भजन करना चाहता है। प्रार्थना करता है, तो सात्विक गुण प्रगट होता है। भूख लगी, खाने के लिए बैठा। भूला प्रार्थना को! खूब खायेगा। संयम का स्मरण नहीं है। हुआ रजोगुण प्रगट। पानी खूब पी लेगा। आलस्य आया, तो सोने की इच्छा करेगा। हुआ तमोगुण प्रगट। इस तरह सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, दो-दो, तीन-तीन घंटों के फासले पर पैदा होते हैं। क्या निर्णय करोगे दूसरे मनुष्य के बारे में? अरे, उसको जरा मरने तो दो! मरने के बाद निर्णय करो, तब उसके सारे जीवन का दर्शन होगा। वह भी अधूरा ही होगा; क्योंकि वह दर्शन एक ही जन्म का है। खैर, इसी जन्म का दर्शन हो, तो भी मरने के बाद ही चर्चा करो। जब तक वह जीवित है, तब तक क्यों निर्णय देते हो? क्यों नहीं आशा करते हो कि मामला सुधर जायगा। यह भी क्यों नहीं समझते हो कि दूसरों के दोष देखते हो, तो तुममें क्या दोष कम हैं? देखने ही हों, तो अपने अंदर क्यों नहीं देखते? फिर उसके निवारण में लग जाओगे, तो भला होगा। गुण-दोष की यह चर्चा बड़ा भयानक रोग है। भागवत में सद्गुणों का वर्णन करते हुए क्या गुण है और क्या दोष है, यह बताया है। कहा है कि गुण और दोषों का अलग-अलग दर्शन करना बड़ा दोष है। उन गुण-दोषों का साथ-साथ वर्णन करना ही सबसे बड़ा गुण है। अतः हम दोष और गुण का अलग-अलग दर्शन न करें। गीता भी यही कहती है—"जो भक्त होते हैं, वे निरंतर तत्त्व-विचार-चिंतन करते हैं और दृढ़व्रती होकर प्रयत्न करते हैं।" इसीको मैंने त्रिविध कर्मयोग कहा और वे सबमें गुण ही देखते हैं।

यह सारा दर्शन ऐसे स्थान में होना चाहिए। ऐसे स्थान पावर-हाउस बनने चाहिए, जहाँ से सबको बिजली मिलेगी। हमने एक स्थान में बैठ कर विद्युत-शक्ति प्रगट करने का काम तीस साल तक सतत किया है। आज हम जो ज्ञान-प्रचार के लिए निकले हैं, वह उसीके बल पर, जो हमने तीस साल के प्रयोग में हासिल किया है। आज जो बात यहाँ रखी है, वह हमारे अनुभव से ही हमने रखी है!

क्रांति के बढ़ते कदम

(धीरेन्द्र मजूमदार)

[सर्व-सेवा संघ का दफ्तर गया से खादीग्राम जाने के बाद भूदान-मूलक क्रांति के विचारानुसार दफ्तर का स्वरूप कैसा हो, इस पर चर्चा चलती रही। चर्चा का निचोड़ यह रहा कि जब हमारा ध्येय वर्ग-विहीन समाज बनाने का है, अर्थात् समाज उत्पादकों का एक वर्ग ही रहेगा, तो उत्पादक-कार्य से अलग दफ्तर के नाम से किसी चीज का स्थान समाज में नहीं रहेगा। लोग उत्पादन का काम करेंगे और उन्हींमें से योग्यतानुसार समाज-सेवा के लिए व्यवस्था का काम भी मिलजुल कर करेंगे। इस दृष्टि से आधे समय भूमि-सेवा और ग्रामोद्योग द्वारा उत्पादन का काम और आधे समय दफ्तर का काम किया जाय, ऐसा सोचा गया तथा आन्दोलन के प्रधान दफ्तर का नाम प्रधान-केन्द्र रखा गया।

पर सिर्फ उत्पादक-श्रम के लिए आधा समय अर्थात् कम-से-कम दिन में चार घंटे निश्चित कर देना ही काफी नहीं था। सेवकों का गुजारा भी आखिरकार अगर श्रम से होना चाहिए, तो उपरोक्त आधे समय में उन्हें कुछ निश्चित उत्पादन भी करना चाहिए। उस दिशा में आगे बढ़ने के लिए इस वर्ष यह निश्चय किया गया कि सेवक जितना खर्च करता है, उसका चौथाई अपने श्रम से पैदा करे। आधे समय में कम-से-कम आधे खर्च के उत्पादन तक पहुँचना है।

तारीख २५ मई '५७ को श्रम-भारती, खादीग्राम-परिवार के लोगों ने मिल कर उपर्युक्त बातों का संकल्प किया। इस अवसर पर पूज्य धीरेन्द्र भाई का जो भाषण हुआ, उसका सार नीचे दिया जाता है।

—सिद्धराज ढड्ढा]

आप सब साथियों ने मिल कर श्रम को जीविका के साथ जोड़ने का जो निर्णय किया है, इससे मुझको बड़ी खुशी हुई। दुनिया में जब क्रांति का विचार फैलाने वाले संदेशवाहक दूसरे लोग होते हैं और क्रांति करने वाले दूसरे, तो वास्तविक क्रांति करने वाले दब जाते हैं और क्रांति के फल को उसके संदेशवाहक अपने कब्जे में करके लाभ उठाते हैं। इसलिए आप लोगों ने अपने जीवन में जो क्रांति का निर्णय किया, वह इस क्रांति के भविष्य को ठीक रास्ते पर ले जायगा, ऐसा मैं मानता हूँ। श्रम की बात मैं पिछले बारह साल से अत्यन्त बेहयाई के साथ करता आ रहा हूँ। 'हुजूर' और 'मजूर' शब्द देश भर के साथियों में एक साधारण शब्द हो गया है। पिछले बारह साल से मैं जो कुछ कहता आया हूँ, उसे अगर आप गौर से देखें, तो आपको मालूम होगा कि मैं हमेशा एक ही बात दुहराता रहा हूँ; चाहे विभिन्न संदर्भ में उसकी भाषा भिन्न-भिन्न रही हो।

मैंने ऐसा किया और समझ-बूझ कर किया, क्योंकि इतिहास न पढ़ते हुए भी मित्रों की चर्चा से जो कुछ मैं समझ सका हूँ, उससे मैंने स्पष्ट देख लिया कि आज तक इतिहास में जो क्रांतियाँ सफल नहीं हुईं, उसका कारण साध्य और साधन की एकरूपता का न होना तथा साध्य के साथ साधक के जीवन की अनुरूपता न होना ही था। खादी के प्रचारक को अपने आश्रित जनों के लिए भी व्यापक रूप से मिल के कपड़े खरीदते हुए मैंने देखा और देखा कि ग्रामोद्योग के पुरोहित अपने लिए मिल की चीजों का इस्तेमाल करते रहे हैं। मैंने यह भी देखा कि नयी तालीम की प्रचारक संस्थाओं के सदस्य पुरानी तालीम में ही अपने बच्चों को भेजना अधिक पसन्द करते हैं और मैंने आखिर में यह भी देखा कि स्वराज्य-प्राप्ति के साथ-साथ उपरोक्त कारणों से ये सारी प्रवृत्तियाँ पल्लवित और पुष्पित होने के बजाय मुरझा कर सूखने लगीं। वे प्राणहीन होकर जड़वत् बन गयीं। **रह-रह कर मुझको बापू की बात याद आती रही कि खादी को मारने वाला खादी-विरोधी नहीं, खादी-भक्त ही होगा!**

खादीग्राम का जन्म ही इस क्रांति के लिए हुआ था। जिस दिन विनोबाजी जवाहरलालजी से मिलने के लिए पौनार से निकले, पता नहीं, उस दिन उनको भी

www.vinoba.in

यह मालूम था या नहीं कि वे एक महान् क्रांति के लिए निकल रहे हैं। लेकिन पता नहीं क्यों, मेरा दिल रह-रह कर कह रहा था कि गांधी की क्रांति अब प्रकट होने वाली है ! मैं बेचैन हो रहा था। मन में समझ रहा था कि नयी क्रांति के लिए नये वाहक तथा नये आधार की आवश्यकता होगी। सेवाग्राम, सेवापुरी आदि पुराने केन्द्रों से मेरा समाधान नहीं था। एकाएक मेरा ख्याल भाई राममूर्ति की ओर गया। वे उस समय काशी में अध्यापक थे। उनके मेरे संबन्ध १३-१४ साल पुराने थे। मैंने उनको लिखा कि नयी क्रांति प्रकट होने वाली है। उसके लिए मैं कुछ साथियों के साथ कहीं बैठना चाहता हूँ। क्या वे मेरे साथ आ सकेंगे ? उन्होंने अपने एक साथी से पुछवाया कि मैं बैठ कर क्या करना चाहता हूँ ?

मैंने उत्तर भेजा कि—

मैं क्रांति के काम के साथ-साथ उत्तर क्रांति की तैयारी भी करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि इसके बिना सफल क्रांति भी प्रति-क्रांति के गर्भ में विलीन होती है। गांधीजी ने भी हमें यही पाठ पढ़ाया। आजादी के आन्दोलन के साथ-साथ रचनात्मक संस्थाओं का संगठन किया और कॉंग्रेस-जनों से कहा कि जितनी देर तक सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित रहता है, उतनी देर वे रचनात्मक काम करें। लेकिन आम तौर से कॉंग्रेस-जनों ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने ऐसा किया होता, तो कम्युनिटी प्रोजेक्ट तथा राष्ट्रीय-विकास-सेवा-प्रखंड की आज की-सी दुर्दशा नहीं होती और न समाज पूँजीवादी तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों के कब्जे में चला जाता।

भाई राममूर्ति ने रवीन्द्र भाई आदि कुछ साथियों के साथ मेरे साथ शामिल होने का निश्चय किया और मैं दो-तीन साथियों के साथ इस पत्थर और जंगल में बैठ गया। मुझे यह कहने में खुशी होती है कि मेरे सब साथी तब से आज तक श्रम के अभ्यास में निरन्तर लगे रहे हैं। कठिन पत्थर फोड़ कर खेत बनाया और कुछ पैदा भी करने लगे। लेकिन अब तक हमने जो कुछ भी किया, यह क्रांति की ओर कोई व्यवस्थित और संयोजित चेष्टा नहीं थी। विषमता का निराकरण कर शरीर-श्रम और बौद्धिक-श्रम का वेतन समान जरूर कर दिया है और चार घंटा प्रतिदिन श्रम की परिपाटी भी डाल दी, लेकिन जीविका के साथ इस श्रम का कोई संबन्ध नहीं रहा है। मैं हमेशा कहता रहा कि हम सब श्रमिक बनने का नाटक कर रहे हैं। लेकिन मुझे खुशी है कि वह नाटक अच्छा होने के कारण असरकारी भी था।

लेकिन इतना होने से ही क्रांति की गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। सन् '५७ में क्रांति का दर्शन अगर आप क्रान्तिकारियों के जीवन में नहीं हुआ, तो क्या वह कहीं बाहर होने वाला है ? जिस दिन श्रम-भारती-परिवार पद-यात्रा में निकल रहा था, उस दिन मैंने कहा था कि पहले लोग समझते थे कि सिर काटने से ही क्रांति होती है। गांधीजी की बदौलत वह धारणा बदली और आज तो कम्युनिस्ट भी यह मानने लगे हैं कि सिर काटने से क्रांति नहीं होती है।

लेकिन आज विनोबा-युग में एक नयी धारणा बन गयी है कि चक्कर काटने से ही क्रांति होती है ! जो भाई-बहन अपने को क्रांतिकारी मानते हैं, वे 'दफ्तर में बैठ कर काम करने से क्रांति से वंचित न हो जायँ;' इस भय से दफ्तर से मुक्ति माँगते हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि न चक्कर काटने से ही क्रांति होती है और न दफ्तर में बैठने से ही क्रांति होती है। क्रांति होती है, मान्यता-परिवर्तन से और जीवन-परिवर्तन से। तो आप लोग आज श्रमजीवी बनने का जो संकल्प कर रहे हैं, वह दफ्तर में बैठ कर काम करने के बावजूद क्रांतियात्रा है। लेकिन पदयात्रा करते हुए भी अगर जीवन-परिवर्तन की कोई प्रक्रिया नहीं रखी जाय और हमारा साधारण जन-सेवक-जैसा ही रवैया रहे, तो वह क्रांति-यात्रा नहीं होगी।

हमारे बहुत से साथी कहते हैं कि हमें श्रम का ज्यादा आग्रह नहीं रखना चाहिए, लाक्षणिक-श्रम से संतोष मानना चाहिए। श्रम-प्रतिष्ठा के लिए लाक्षणिक श्रम की परिपाटी तो आज पूंजीवादी समाज में भी चल रही है।

उससे आप कौनसी क्रांति करेंगे ? गंगा-जल से धोने पर चीजें शुद्ध होती हैं, तो चार बूंद गंगा-जल घर भर का सामान शुद्ध करने के लिए काफी होता है ! हर लाक्षणिक चीजों की यही दुर्दशा होती है। हम भी अगर लाक्षणिक श्रम से संतोष मानेंगे, तो आगे चल कर जेब में छोटी-सी कुदाली रख कर नियमित रूप से कहीं दो बार कुरेद लेंगे, तो भी हमें संतोष हो जाने वाला है !

ये सब तो तात्त्विक चर्चाएँ हैं। आप व्यवहार पर उतरेंगे, तो श्रमजीवी बनने की आवश्यकता अच्छी तरह समझ पायेंगे। प्राचीन भारत में लोक-सेवक भिक्षा पर जीवन-यापन करते थे, तो वे सामन्तों के गुलाम बने। बाद को लोगों ने उस प्रथा को अच्छा नहीं समझा, तो नाना प्रकार की लोक-कल्याण-निधि की सृष्टि हुई। लेकिन वह निधि पूँजीपतियों के कोष से बनने के कारण उन्हींके नियंत्रण में आ गयी, तो लोक-सेवक उनके आश्रित हुए। इस प्रकार स्वतंत्रता के साथ अगर हम अपने क्रान्तिकारी स्वरूप को कायम रखना चाहते हैं, तो श्रम-आधारित जीवन के सिवा दूसरा उपाय क्या है ? चरखा-संघ के नवसंस्करण की बात आपको याद है न ? बारह साल पहले बापूजी शोषण-मुक्त-समाज कायम करने के उद्देश्य से चरखा-संघ का पुनर्संघटन करना चाहते थे। उसके लिए उन्होंने नौजवानों को समग्र-ग्राम-सेवा के लिए आवाहन किया था। उन्होंने उन्हें श्रमजीवी बनने को कहा था। उन्होंने चरखा-संघ से प्रस्ताव भी पास करवाया था कि ऐसे सेवक पहले साल २५ प्रतिशत स्वावलम्बी होंगे और ७५ प्रतिशत की सहायता चरखा-संघ देगा। फिर उत्तरोत्तर स्वावलंबन बढ़ाते हुए अपेक्षा यह थी कि चरखा-संघ की मदद घटते-घटते ५ साल में कार्यकर्ता पूर्ण स्वावलम्बी हो जायँ। निस्संदेह गांधीजी की कल्पना यह नहीं थी कि ये कार्यकर्ता केवल उत्पादन का ही काम करें। उन्होंने उन्हें समग्र ग्राम-सेवा का कार्यक्रम दिया था। यानी स्वावलम्बी बनने के बाद भी लोक-सेवा करने का समय रहेगा, ऐसी मान्यता थी। तब से आज तक यह विचार किताबों में रहा और आज विनोबा की बदौलत हम सब उसका उच्चारण करने लगे हैं। लेकिन व्यापक रूप से उसका प्रत्यक्ष अमल का प्रयोग हमने अभी तक कहीं नहीं किया है। मैं मानता हूँ कि अगर १२ साल बाद ही सही, आप इस विचार का कुछ दर्शन समाज को दिखा सकें, तो आप अपने बापू की आत्मा को शांति पहुँचायेंगे। हमारे लिए वही सबसे बड़ा पुरस्कार है।

अगर हम सर्वोदय के विचारानुसार क्रांति करने वाले इस दिशा में आगे नहीं बढ़ेंगे, तो हमारी क्रांति केवल विफल ही नहीं होगी, बल्कि हमारे कार्यक्रम के फलस्वरूप कम्युनिज्म फैलेगा ! आप व्यक्तिगत सम्पत्ति का विसर्जन करा रहे हैं। ग्रामदान से मालकियत का समाजीकरण करा रहे हैं। लेकिन इन सबका मार्गदर्शन करने का तथा व्यवस्था चलाने का काम बुद्धिजीवियों के हाथ में रखना चाहते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आप समाज में बुद्धिजीवी-वर्ग की डिक्टेटरशिप चलाना चाहते हैं। कम्युनिज्म भी तो वही करता है ! क्या केवल हिंसा और अहिंसा का भेद ही सर्वोदय और कम्युनिज्म में एकमात्र भेद है ? या आपका कुछ स्वतंत्र दर्शन भी है ?

श्रमदान से आन्दोलन चले; ऐसा मैं अक्सर कहा करता हूँ। लेकिन श्रमदान से भी हमारा काम नहीं चलेगा। आज जो चल रहा है, उससे वह आगे का कदम जरूर है, लेकिन वहीं पर रुकने से हम हार जायेंगे, क्योंकि श्रमिकों का श्रम जब चंदे के रूप में आयेगा और हम बिना श्रम किये उपभोग करेंगे, तो हमारी हैसियत आज से कुछ दूसरी नहीं होगी। उससे हम व्यवस्थापक-वर्ग ही रह जायेंगे। श्रमिक लोग जब देखेंगे कि हमारा ही श्रम लेकर हमसे अधिक उसका उपभोग ये कर रहे हैं, तो हमारा विचार सुन कर वे श्रमदान करना बन्द भी कर सकते हैं।

तो अब क्रांति की प्रक्रिया में श्रमदान काफी आगे का कदम होने पर भी श्रम-भारती के लिए वह काफी नहीं है, क्योंकि इससे भी क्रांति पर का खतरा हटता नहीं।

मुझे विश्वास है कि आप क्रांति के खतरे को रोकने में सफल होंगे, क्योंकि मैंने समझ लिया है कि गांधीजी ने जो आशा की थी, वह सम्भव ही नहीं; व्यावहारिक भी है। उस दिन भाई सिद्धराज ने मुझसे पूछा था कि अगर सपरिवार निष्ठापूर्वक उत्पादन-श्रम किया जाय, तो कितनी कमाई हो सकती है, तो मैंने कहा था कि आज के बाजार-भाव से अस्सी रुपया मासिक तक हो सकती है। मुझको इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मुझको विश्वास है कि ईश्वर आपको सामर्थ्य दे, जिससे आप क्रांति का स्पष्ट चित्र देश के सामने रख सकें।

…हम अगर ऊपर से नीचे जायेंगे, तो हमारा काम होने वाला नहीं है। हमारा काम नीचे से बनता है। उनसे लेकर फिर ऊपर वालों के पास पहुँचेंगे। उनकी तरफ से ही कार्यकर्ताओं के संरक्षण का इंतजाम होना चाहिए। हमारा कार्यकर्ता सिर्फ भूदान का कार्यकर्ता नहीं होना चाहिए। वह सब तरह का सेवक है और उससे कोई भी सेवा ले सकते हैं, ऐसा गाँववालों को लगना चाहिए। इस प्रकार के एक-एक कार्यकर्ता २०-२५ गाँवों के बीच होने चाहिए।

—विनोबा

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

२८ जून सन् १९५७

लोकनागरी लिपि *

आपको पारसमणी बनना होगा !

(वीनोबा)

मेरा वीश्वास संस्था पर नहीं, व्यक्ती पर है। संस्था को हृदय नहीं होता, अीस वास्ते वहां हृदय-परीवर्तन का भी सवाल नहीं अुठता ! कोअी भी वीचार व्यक्ती को सूझता है और अुसका स्वीकार दूसरा व्यक्ती करता है। कन्वर्शन (परीवर्तन) व्यक्ती का होता है। हमने जब काम शुरू कीया, तब जयप्रकाश अुसमें नहीं थे। अेक दीन अुनके वीचार में फरक हुआ। हमसे बातें तो की थीं, परंतु हमने यह नहीं कहा था की वे वीचार में परीवर्तन करें। यह हमारा रीवाज नहीं है की व्यक्ती के तौर पर कीसीको अुपदेश दें। यह तो माली का काम है, जैसे हर पेड़ को पानी देना ! पर मेघ हर अेक पेड़ की फीक्र नहीं करता, वह बारीश बरसाता है। बाबा का काम मेघ का है। अतः कीसी खास व्यक्ती को वह अुपदेश नहीं देता ! हम कीसी व्यक्ती पर आक्रमण नहीं करना चाहते। आक्रमण करेंगे, तो वह हींसा होगी। हम तो केवल नीर्देश देंगे, सूचना करेंगे, जानकारी देंगे, ज्ञान-प्रचार करेंगे। अुसमें से जो पौधा बढ़ेगा, वह बढ़ेगा। तो, जयप्रकाशजी ने अेक दीन जीवन-समर्पण कीया और जीवनदान की बात भी अुन्होंने ही नीकाली, बाबा ने नहीं ! दूसरे दीन बाबा ने अुनको लीख कर दीया की हमारा भी जीवन अीस काम के लीअे समर्पण है ! रवीशंकर महाराज, बाबा राघवदास, नव बाबू आदी कीतनी ही मीसालें अैसी हैं। यह है धर्म-प्रचार की पद्धती। कीसी संस्था का अीस तरह परीवर्तन नहीं हो सकता।

हां, व्यक्ती का परीवर्तन होने के बाद वह संस्था का परीवर्तन कर सकता है। अीस वास्ते हमने बहुत ज्यादा आशा व्यक्ती से की है। कीतने ही लोगों ने व्यक्तीगत तौर पर अीसमें मदद की है और अुनकी संस्था अलग रही है ! संस्थाअें अीसमें नहीं आतीं, यह देख कर नीराश होकर मनुष्य ही आ जाते हैं ! कांग्रेस ने अीस काम को सपोर्ट (अनुमोदन) कीया, लेकीन अुठाया नहीं, तो कीतने ही कांग्रेस वाले खुद आये, पी० अेस० पी० वाले भी आये। हम कहते हैं की यही हमारा बल है। आखीर मुक्ती व्यक्ती ही पाता है और समाज की मुक्ती का वीचार भी व्यक्ती ही समझायेगा। अीस तरह के व्यक्ती जगह-जगह पड़े हैं-भीन्न-भीन्न संस्थाओं में, हाअीस्कूल-कॉलेजों में, राजनैतीक पार्टीयों में—सब दूर फैले हैं, पर अेक-अेक व्यक्ती को आपके पास आने का आकर्षण होना चाहीअे !

(परली, ८-६-'५७)

* लिपि-संकेत : ि = ी, ी = ी, ख = ख; संयुक्ताक्षर हलंत-चिह्न से

सर्वोदय की दृष्टि :

लोकमत जागृत करने में शक्ति लगायें

प्रश्न : पिछले दिनों में मैंने आज के कथित वेतन-भोक्ता जन-सेवकों के, (जो कि लोकसभा और विधान-सभाओं में सेवा करते हैं) विरुद्ध यानी उनके वेतन लेने के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया था। सत्याग्रह-लगान बंदी के रूप में अकेला ही करना है, क्योंकि हमारे द्वारा प्राप्त धन से ही तो वे वेतन-भत्ते से ऐशोआराम करते हैं ! इस तरह हमारा शोषण और हमारे ऊपर शासन सेवा के नाम पर चलाना, यह हमारी मूर्खता या कमजोरी का ही कारण है, ऐसा मुझे लगता है। एक जागृत नागरिक की हैसियत से क्या ऐसा करना उचित है या नहीं, यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ। इस समय मेरा क्या धर्म है, कृपा कर बतायें। सत्याग्रही लोकसेवक के नाते मेरा कर्तव्य क्या है, अवश्य बतायें। आप हमारे मार्गदर्शक हैं।

विनीत—
महावीर सिंह

उत्तर : आप कालडी-सम्मेलन में तो आये ही थे। वहाँ पूज्य विनोबा के भाषण आपने ध्यान से सुने होंगे। सत्याग्रह के विषय में उन्होंने कुछ निश्चित मर्यादाएँ बतलायी हैं। एक मर्यादा यह भी बतलायी कि हम सत्याग्रह जिसके लिए करते हैं, उसके दिल में कम-से-कम हमारी नीयत के बारे में संदेह पैदा नहीं होना चाहिए। विनोबा ने तो यही कहा कि उसके दिल में हमारे लिए अनुकूल भाव पैदा होना चाहिए। मैंने उनकी बात का कम-से-कम अर्थ आपके सामने रखा।

आज विधान-सभा तथा संसद के सदस्य जो वेतन लेते हैं, असल में वह तनख्वाह नहीं, भत्ता है। देश के लोकनियुक्त प्रतिनिधियों ने उसका स्वीकार किया है। ऐसी हालत में उसके खिलाफ लोकमत बनाने की कोशिश करना सबसे पहले आवश्यक है। लोकनियुक्त प्रतिनिधियों के खिलाफ सत्याग्रह प्रत्यक्ष लोकमत के आधार पर ही हो सकता है। आज देश में जाग्रत प्रत्यक्ष लोकमत करीब-करीब नहीं के बराबर है। ग्रामदान का आंदोलन इस प्रकार का अधिक-से-अधिक परिणामकारी उपाय इस समय उपलब्ध है। मेरा अनुरोध है कि आप अपना उत्साह और क्रिया-शक्ति इसीमें लगावें।

स्नेहाकांक्षी
आबू, १५-६-५७ —दादा धर्माधिकारी

जिले-जिले के निवेदकों से—

अब प्रांतीय समितियाँ विसर्जित हो चुकी हैं, अतः आपकी ओर से हर पखवाड़े हमें आपके क्षेत्र के काम की प्रगति के आँकड़े और जानकारी बराबर मिलती रहे, ऐसी हमारी अपेक्षा है। हमारी समस्त शक्ति अब मुख्यतया ग्रामदान के काम में लगनी चाहिए। यह भी जरूरी है कि ग्रामदान के काम की देश में क्या प्रगति हो रही है, यह जानकारी समय-समय पर प्रकाशित होती रहे। अतः आपसे निवेदन है कि आप अपने क्षेत्र के संबंध में नीचे लिखे अनुसार जानकारी तुरंत भेजने की कृपा करें :

(१) आपके क्षेत्र में ३१ मई, १९५७ तक हो चुके ग्रामदानों की संख्या।
(२) आगे जो ग्रामदान मिलें, उनके नाम तथा परिवारों की संख्या एवं कुल भूमि (आँकड़ों में)—जो ग्रामदान में शामिल की गयी है।
(३) ग्रामदानी गाँव की विशेष परिस्थिति अगर कोई हो, जैसे कि बाहर के निवासियों की कोई जमीन उस गाँव की हो, लेकिन ग्रामदान में शामिल न हुई हो।
(४) ग्रामदानी गाँवों के प्रमुख कार्यकर्ताओं का नाम, चाहे वह वहाँ का निवासी हो, चाहे बाहर का।

मई १९५७ तक जो ग्रामदान हुए हैं, उनकी केवल संख्या ही माँगी गयी है, पर उन गाँवों के बारे में भी अगर संभव हो, तो ऊपर की तफसील के अनुसार भी जानकारी भेजें।

इस परिपत्र को आवश्यक समझ कर कृपया तुरंत कार्रवाई करें।

अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, खादीग्राम (मुंगेर) —सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री

www.vinoba.in

भूदान-आंदोलन में नगर-पदयात्रा का महत्त्व

(नारायण देसाई)

आज जब देश भर में भूदान-आंदोलन में ग्रामदान पर जोर दिया जा रहा है, तब नगरों के कार्यक्रम का विचार कर लेना उचित भी है और जरूरी भी। ग्रामदान दिये जायेंगे गाँवों में, लेकिन उनके लिए अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण बनेगा हमारे नगरों में। हमारे नगर ही आज हमारे विचार-प्रवर्तन के केन्द्र बने हुए हैं। यहीं से अच्छे-बुरे, हर तरह के विचार देश भर में फैलते हैं। अतएव यदि विचार-क्रान्ति करनी हो, तो हमें नगरों के कार्यक्रमों के बारे में अवश्य ध्यान देना चाहिए। भूदान-आन्दोलन ने सिर्फ भूमिहीनों के, किन्तु हमारे भी हित में है, उससे ग्राम-वासियों की तरह हमारा भी उत्कर्ष हो सकता है, इतनी बातें यदि नगरवासी-खास कर वहाँ के बुद्धिमान नागरिक समझ जाते हैं, तो मानना चाहिए कि ग्रामदान की आधी मंजिल हमने तय कर ली। कहीं-कहीं ग्रामदान हो जाने के बाद प्रति-क्रान्ति होने की संभावना रह जाती है। नगरों में हमारा विचार फैल जाने के बाद उसकी भी गुंजाइश नहीं रहती।

और एक दृष्टि से भी नगरों में भूदान-आन्दोलन का प्रवर्तन अब अत्यावश्यक हो गया है। पिछले कुछ महीनों में देश भर में राज्य-पुनर्रचना के निमित्त जो हिंसा के प्रदर्शन हुए, उनमें से अधिकांश हमारे नगरों में ही हुए। हमारे ग्रामवासी ऐसा जीवन बिता रहे हैं कि हिंसा-अहिंसा का प्रश्न उन्हें प्रायः छूता ही नहीं है। विज्ञान ने आज बड़ी हिंसा को भी प्रायः अशक्य ही कर दिया है। डर है, अब फुटकर हिंसा का, जो अक्सर नगरों में प्रगट हुआ करती है।

हमारे नागरिकों के दिल और दिमाग से छोटी हिंसा का महत्त्व खतम करना – यह भी हमारे नगरों के कार्यक्रम का एक उद्देश्य है।

गुजरात में पिछले कुछ महीनों से नगरों के काम का प्रयोग हुआ। उसका संक्षिप्त ब्यौरा सर्वोदय-संमेलन, कालड़ी में दिया गया था। भूदान-पत्रों के पाठकों के हाथ में भी उसे रख देने से देश के अन्य नगरों में उसका लाभ उठाया जा सकता है।

हमारे सारे कार्यक्रम की नींव है, पदयात्रा। हम गाँवों में पैदल सिर्फ इसलिए नहीं जाते हैं कि वहाँ अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं होते। पदयात्रा हमारा अनोखा साधन है। वह सर्वजनसुलभ, चिंतन-सहायक और शांतिप्रेरक साधन है। अतएव नगरों के कार्यक्रमों में भी पदयात्रा को अनिवार्य माना गया है।

हमारी ताकत सातत्य में है। सामान्य से सामान्य कार्यकर्ता भी यदि सातत्य से अपना काम जारी रखते हैं, तो उनका सातत्य ही उन्हें आत्मदर्शन तथा शक्ति प्रदान करता है। अतएव नगरों के कार्यक्रमों में सातत्य को भी जरूरी माना है।

गुजरात उत्तर से दक्षिण में फैला हुआ प्रांत है। हमने तय किया कि एक सिरे से दूसरे सिरे तक लगातार पदयात्राएँ की जायँ। आरंभ किया दक्षिण से। दक्षिण गुजरात में चुनाव का ज्वर, उत्तर गुजरात के मुकाबले कम था और हमें अपना काम इस प्रकार करना था कि जिससे काम सर्वेषाम् अविरोधेन हो।

यात्रियों की संख्या, सत्तावन् का वर्ष और गुजरात के नगरों की बड़ी संख्या को ध्यान रखते हुए हमने इस यात्रा में केवल पंद्रह हजार से ऊपर की जनसंख्या वाले शहरों को कार्यक्षेत्र बनाया। प्रत्येक शहर में जनसंख्या के अनुसार कम-से-कम छह और अधिक से अधिक पंद्रह दिन तक मुकाम करने का तय किया। एक नगर से दूसरे नगर तक जाते समय रास्ते में दस-पंद्रह मील की दूरी पर जो ग्राम मिले, वहाँ रात को ठहर कर ग्रामयात्रा का कार्यक्रम भी संपन्न किया।

नगर के प्रत्यक्ष काम के चार मुख्य अंग हैं : (१) दैनिक विचार-शिविर, (२) व्यक्तिगत संपर्क, (३) आम सभाएँ तथा (४) विशिष्ट सभाएँ।

दैनिक विचार-शिविर को हमने मुख्य अंग माना। नगर में किसी एक केन्द्रवर्ती स्थान पर कोई ऐसा समय पसंद कर, जब कि नगर के अधिक-से-अधिक बुद्धिमान लोग इसमें हिस्सा ले सकें, नियमित रूप से शिविर चलाया। शिविर में इस चीज पर जोर दिया जाता था कि भूदान और सर्वोदय का विचार कोई दकियानूसी विचार नहीं, एक अत्यन्त वैज्ञानिक एवम् क्रांतिकारी विचार है। यह क्रांति भी किसी एक वर्ग को स्पर्श करने वाली नहीं, हम सबके हित में है, हम सबके लिए है तथा हम सब इसमें हिस्सा ले सकते हैं। शिविर ने यदि इतना स्पष्ट कर दिया, तो उसका उद्देश्य सफल हो गया। शिविर में कुछ चुने हुए विषयों पर शास्त्रीय विवेचन, प्रश्नोत्तर एवं चर्चाएँ होती हैं। थोड़ी-सी कल्पना देने के लिए उन विषयों के शीर्षक यहाँ दे रहा हूँ, जो अभी बड़ोदा के शिविर में लिये जायेंगे :

(१) विनोबा : एक क्रांतिकारी। (२) भूदान-यज्ञ का इतिहास। (३) क्या भूमि-समस्या कानून से हल हो सकती है? जगत् के विभिन्न देशों के अनुभव। (४) सर्वोदय-दृष्टि से : उत्पादन, वितरण तथा व्यवसाय। (५) संयोजन—आज का और सर्वोदय का। (६) स्वदेशी और यंत्र की मर्यादा। (७) राजनीति से लोकनीति—तीन व्याख्यान। (८) अहिंसा के मार्ग पर अंतर्यात्रा। (९) सत्याग्रह-मीमांसा। (१०) ग्रामदान।

शिविर के लिए पहले दिन नगरफेरी में ऐलान किया जाता है, व्यक्तिगत संपर्क में लोगों से आग्रह किया जाता है, अखबारों में रिपोर्ट दिये जाते हैं, नगर के मुख्य-मुख्य चौराहों पर सूचना-फलक लिखे जाते हैं। कोशिश यह होती है कि शिविर में बुद्धिमान लोग कम-से-कम एक बार आयें। एक बार आ जाने पर उनको दुबारा बुलाने की जरूरत नहीं होती, वे स्वयं भी आते हैं, अपने मित्रों को भी लाते हैं। आरंभ में शिविर में आने वालों की संख्या कम रहती है—बाद में वह बढ़ती जाती है। हमारे शिविरों में पंद्रह लोगों से तीन सौ लोगों तक की संख्या रही है।

व्यक्तिगत संपर्क के लिए यात्री कुछ टोलियों में बँट जाते हैं और चुने हुए मुहल्ले में एक ही टोली रोज जाती है। इससे परिचय भी हो जाता है तथा कोई दान देने का विचार कर रहा हो, तो उस विचार को पक्का करने का समय दे कर दुबारा याद दिलायी जा सकती है। प्रत्येक टोली में कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसा रखने की कोशिश की जाती है, जो सर्वोदय के बारे में पूछे जाने वाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों के उत्तर दे सके। लेकिन यात्रिकों से यह आग्रहपूर्वक कहा जाता है कि यदि किसी प्रश्न का उत्तर आप न जानते हों, तो उसका अंट-संट जवाब न दें, बल्कि प्रश्नकर्ता से यह कहें कि मैं यह नहीं समझा हूँ, अपने साथी से पूछ कर या अध्ययन करके बतलाऊँगा। रोज एक घंटा इस प्रकार के प्रश्नों की छानबीन यात्रियों में आपस में होती है। उनके लिए यह एक अध्ययन का विषय बन जाता है। व्यक्तिगत संपर्क में ही साहित्य-बिक्री तथा भूदान-पत्रों के ग्राहक बनाये जाते हैं। इसी समय भूदान, संपत्तिदान तथा समयदान-पत्र भराये जाते हैं। हम सभाओं में दानपत्र नहीं भराते। उसके तीन कारण हैं : हमारी सभाएँ उतनी प्रभावशाली नहीं होतीं कि लोग उसी समय उठ कर दानपत्र भर दें। दूसरे, सभा में दानपत्र भराये जाते हैं, यह सुन कर कई लोग आने में हिचकिचाते हैं। तीसरा कारण यह है कि व्यक्तिगत रूप से दानपत्र भराने में प्रत्येक व्यक्ति को पूरा समझाने का मौका मिलता है। इस पद्धति में एक कमजोरी जरूर रह जाती है कि जहाँ हम नहीं पहुँच सके, वहाँ से दानपत्र नहीं मिलते। किन्तु अक्सर जो लोग दाता बनते हैं, वे दूत भी बन जाते हैं।

आम सभाएँ अक्सर रोज अलग-अलग मुहल्ले में रखी जाती हैं। आखिरी दिन नगर की एक सर्व-मान्य सभा की जाती है। सभा की सूचना अखबार में, शिविर में तथा सूचना-फलकों पर पहले से दी जाती है। लेकिन जिस मुहल्ले में सभा होने वाली हो, उसमें व्यक्तिगत संपर्क के लिए जाने वाले सेवक डौंडी पीट कर भी सभा की सूचना दे देते हैं। लाउड स्पीकर की व्यवस्था मुहल्लेवाले या नगर के उत्साही लोग करते हैं। नगर-यात्रा उसका खर्च नहीं करती। शिविर की तरह आम तौर पर आम सभाओं में भी आरंभ में कम लोग आते हैं—अंतिम दिनों में संख्या बढ़ती है। सभा के समय साहित्य-बिक्री की व्यवस्था तो रहती ही है।

विशिष्ट सभाएँ नगर के खास मण्डलों में होती हैं। हर प्रकार के मण्डलों एवं संगठनों से मिलने की कोशिश की जाती है—मसलन् व्यापारी, महाजन, वकील-मण्डल, डाक्टर-संघ, रोटरी क्लब, कॉलेज; हाईस्कूल्स, छात्रावास, मजदूर-महाजन, अलग-अलग धंधे करने वाले लोगों के महाजन आदि। इन सभाओं में कोशिश यह समझाने की होती है कि उन विशिष्ट लोगों के व्यवसाय के बारे में सर्वोदय के विचार क्या हैं, वे अपने व्यवसायों में सर्वोदय-दृष्टि कैसे ला सकते हैं, आदि। अक्सर ये विशिष्ट सभाएँ अच्छी चर्चा-परिषदें हो जाती हैं। लेकिन कभी-कभी इनमें सर्वोदय के मुख्य विचार से अलग रह कर व्यवसाय के विशिष्ट प्रश्नों में उलझे जाने का खतरा भी है।

नगर-यात्रिकों के दिन का बहुत बड़ा हिस्सा तो व्यक्तिगत संपर्क में जाता है। भोजन की व्यवस्था शहरवालों की सुविधा के अनुसार रोज एकसाथ, लेकिन रोज अलग-अलग स्थान पर या अलग-अलग घरों में दो-दो लोगों को बाँट कर होती है। बाकी के समय में नींद और नित्य कर्म को छोड़ कर बाकी अधिकांश

www.vinoba.in

समय का उपयोग यात्रियों के स्वाध्याय में होता है। नगर-यात्रा हमारे सारे कार्यक्रम में नये कार्यकर्ता भर्ती करने का तथा सेवकों को तालीम देने का अच्छा क्षेत्र बन जाती है। अध्ययन के विशेष अवसर सुबह प्रार्थना के बाद, दोपहर को भोजन के बाद तथा शाम को शिविर के समय मिलते हैं। प्रार्थना का क्रम ही ऐसा रखा जाता है कि जो अध्ययनपूर्ण बने। हम लोगों ने आश्रम-भजनावली से रोज एक नये भजन का गहराई से अध्ययन करने का रिवाज रखा था। किसी पुस्तक का अध्ययन भी रखा जा सकता है। नगरवासियों के प्रश्नों की चर्चा के बाद जो समय बच जाता है, उसमें किसी किताब का अध्ययन होता है। शाम के शिविर के व्याख्यानों की नोंद प्रत्येक यात्रिक रखें, इसका आग्रह रखा जाता है। इन शिविरों में अलग-अलग विषयों पर व्याख्यान देने के लिए यात्रिकों को बारी-बारी से तैयार भी किया जाता है। यात्रा का पूरा खर्च पुस्तक-बिक्री के कमीशन से निकल जाता है। नगर-यात्रा में सबसे बड़ी कमी महसूस होती है, प्रकृति के सम्पर्क की। उसकी पूर्ति के लिए आकाश-दर्शन, नदी-स्नान आदि जहाँ संभव हो, किये जाते हैं। लेकिन असल प्रकृति-दर्शन तो जब एक नगर छोड़ कर दूसरे नगर तक पदयात्रा करके जाते हैं, तभी होता है।

विभिन्न प्रान्तों में परिस्थिति के अवसर पर कार्यक्रम में अन्तर हो सकता है। इस विषय में विशेष जानकारी लेखक के पास से पो० वेड्छी, जि० सूरत के पते से मिल सकती है।

दया को दासी नहीं, रानी बनाना है !

(विनोबा)

यहाँ एक अस्पताल खोला गया है, जिसमें कुछ पैसा लोगों ने दान दिया और कुछ सरकार की तरफ से मिला है, पर इससे समाज-रचना में क्या फरक पड़ा ? इतना ही हुआ कि आधा खर्चा लोगों ने उठाया। परंतु समाज में भेद तो कायम हैं ! श्रीमान्, दरिद्री कायम हैं। किसीको पूरा पोषण भी नहीं मिलता। बीमारियाँ होती हैं। बीमारियाँ पैदा न हों, ऐसी कोई योजना भी नहीं; बल्कि रोग बढ़ें, कैसे, यही योजना है ! तरह-तरह के व्यसन बढ़े हैं। आरोग्य की तालीम नहीं है, लोग बेकार हैं। अनाज के भाव बढ़े हैं। पोषण मिलता नहीं। मजदूरी कम हो रही है। इस तरह बीमारी बढ़ने की ही कुल योजना जारी है और उधर लोग बीमार पड़ते हैं, तो दया बरतते हैं और सहन नहीं होता तो अस्पताल खोलते हैं ! पर यह जो दया है, उसमें ताकत नहीं है। समाज की स्थिति कायम रख कर यह ऊपर-ऊपर से मरहमपट्टी लगाना ही हुआ। जो दवाई देते हैं, वे भी ऐलोपैथिक, परदेशी—जिसके जरिये देश का शोषण होता है। इस तरह वृक्ष के मूल में पानी देते रहते हैं और ऊपर-ऊपर से शाखाएँ काटते हैं। यह तो वृक्ष को बढ़ाने की ही योजना है।

आजकल ऐटम और हाइड्रोजन बम निकले हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उसका प्रयोग बंद होना चाहिए। क्यों बंद होना चाहिए, जब कि लोग तो आज एक-दूसरे को ही खा रहे हैं ! काम-वासना बेहद बढ़ गयी है। गंदे सिनेमा देखते हैं और गंदी किताबें ही पढ़ते हैं। स्कूल में संस्कृत पढ़ाते हैं, तो भी उपनिषद् नहीं, ऋतुगंधा, कादंबरी आदि पढ़ाते हैं। व्यसनी पदार्थ भी उधर बढ़ ही रहे हैं। अमेरिका के शास्त्रज्ञ ने कहा कि बीड़ी, सिगरेट से कैंसर होता है, तो सिगरेट, बीड़ी वाले कहते हैं, उनके प्रयोग ही अधूरे हैं, वह आखिरी निर्णय नहीं है ! वे भी अब अपनी तरफ से वैज्ञानिक को काम देंगे, पैसा भी देंगे। तब शायद सिगरेट बच जाय ! ऐसी हालत में अगर लोग परस्पर-शत्रु नहीं बनेंगे, तो क्या मित्र बनेंगे ? ऐटम और हाइड्रोजन के खिलाफ में नहीं हूँ, लेकिन मेरी भी एक शर्त है। लोग कहते हैं कि ऐटम और हाइड्रोजन के प्रयोग न हों। हम कहते हैं कि ऐटम और हाइड्रोजन ऐसे हों, जिनसे लोग जख्मी न हों, सिर्फ मरें ! हिरोशिमा में ऐटम बम से बहुत मरे, परंतु उससे भी ज्यादा जख्मी हुए। यह तो सब अन्‌सायन्टीफिक है ! उससे लोग भाररूप बनते हैं। देश को भार होता है, राहत नहीं मिलती। भागवत् में कहा है कि भगवान् का अवतार भूभारावतरणाय—भूमि का भार कम करने के लिए हुआ। उन्होंने क्या किया ? पांडव खतम, कौरव खतम, यादव भी खतम और स्वयं श्रीकृष्ण भी खतम हुए। उन्होंने कहा, आपको मार करके हम नहीं बचना चाहते, हम आपके सखा हैं, इसलिए हम भी आपके साथ आते हैं। ऐसा ही ऐटम और हाइड्रोजन भी करेंगे, तो मनुष्यों का उद्धार होगा ! हम तब कहेंगे, वह सच्ची खोज है। तो शास्त्रज्ञ ऐसा औजार बनायें, जिससे लाखों लोग तो मरें, पर जख्मी कोई भी न हों !

आराधना किसकी ?

सोचने की बात है कि आज जो दया बतायी जाती है, वह सच्ची दया नहीं है। दया नहीं है, ऐसी बात नहीं है, जैसे इस अस्पताल को बनाने में ही पैसा देते हैं। परंतु यह दया 'दासी' है और रानी है काली याने शक्ति ! मानते हैं कि रक्षा प्रेम, करुणा और दया से नहीं होगी। बुद्ध भगवान् का स्मरण तो करते हैं, उत्सव भी मनाते हैं, करुणा भी चाहते हैं, परंतु रक्षण की शक्ति करुणा में है, यह नहीं मानते। सरकार के डिफेंस डिपार्टमेंट में बुद्ध भगवान् का, ईसा मसीह का कोई स्थान नहीं, वहाँ 'शक्ति-देवता' ही चाहिए—शस्त्रधारी ! लेकिन वे काली के मंदिर के शस्त्र नहीं, नये, बड़े शस्त्र चाहिए। वे मानते हैं कि करुणा में रक्षण की शक्ति नहीं है। वह तो दासी है और स्वामिनी है शक्ति-देवता। आखिर में उसीको ही आवाहन करना पड़ता है न ?

हम कहना चाहते हैं कि आजकल की ऐसी करुणा निकम्मी है। करुणा और प्रेम-शक्ति से तो समाज की, देश की रक्षा हो सकती है, पर इसके लिए समाज की रचना ही बदलनी होगी। स्वराज्य के बाद हमको जो करना है, वह बुनियादी काम करना होगा। सेवा-कार्य के लिए टैक्स बढ़ाते हैं। बिना टैक्स बढ़ाये भी पैसा मिल सकता है, लेकिन वह रास्ता डरपोक राष्ट्र को नहीं दीख पड़ता। सैन्य का खर्चा कम हो सकता है, लेकिन हिम्मत किसको हो ? तो जब तक हम समाज में ताकत नहीं पैदा करते, तब तक देश सुखी नहीं होगा। करुणा और प्रेम की शक्ति नहीं बनाते, तब तक निस्तार नहीं होगा। हमको सीखना होगा कि प्रेम की, करुणा की भी ताकत होती है और उससे समाज की रक्षा हो सकती है। शस्त्र की जरूरत ही नहीं है, ये सब बातें करके दिखानी होंगी।

ताकत कौनसी व कैसी ?

एक शख्स सोचता है, भूमि का मसला प्रेम और करुणा से हल करे ! कोई कहते हैं, बाबा का तरीका मूर्ख का तरीका है। तो क्या कत्ल या कानून से मसला हल होगा ? ऐसा क्यों नहीं कहते हो ? कत्ल से हल करने के लिए बाबा की इजाजत है, पर छः महीने की ही मुद्दत देगा ! तब तक बाबा हिंसा के खिलाफ नहीं उठेगा ! अहिंसा को अपने पास रखेगा। जंगल में जाकर तप करेगा। कर सकते हो ऐसा ? नहीं ? अच्छा तो कानून बनाओ ! पर एक नाटक कंपनी आयेगी और खेल दिखा कर चली जायगी। यह है हालत ! लोग मूरख नहीं हैं। उन्होंने पहले से ही कानून को फेल करने की तैयारी कर रखी है। उधर पंडित नेहरू कहते हैं—"लैंड रिफार्म में देरी हो रही है, यह अक्षम्य है।" इधर बाबा कहता है, तो बाबा को आदत ही है, बाबा के पास दूसरी-तीसरी पावर है कहाँ ? वही बाबा की पावर है। पर क्या पंडित नेहरू को पावर नहीं है ? छः साल से यह सवाल खड़ा है। परदेश के लोग देखते हैं, तो लिख देते हैं कि भारत सरकार अच्छा काम कर रही है ! परंतु जब तक जमीन का मसला हल नहीं होता, तब तक सरकार असफल है और कानून से हल करोगे, तो लिटिगेशन बढ़ेगा। जमीन थोड़ी-सी मिलेगी, मुआवजा देना पड़ेगा, आपस-आपस में कटुता बढ़ेगी। देश की ताकत नहीं बढ़ेगी, तो यह काम न कानून से होगा, न कत्ल से। इसी वास्ते बाबा ने करुणा का काम उठाया है। इस प्रश्न की तरफ भूमि के मसले की दृष्टि से ही मत देखो। इस तरीके से अगर कुछ हुआ, तो करुणा की, प्रेम की, अहिंसा की ताकत ही बढ़ेगी। आज अहिंसा की कुल देश को जरूरत है। जब तक अहिंसा समाज के मसले हल नहीं करती, तब तक वह रानी नहीं बन सकती। रानी रहेगी शक्ति। अतः उसको यहाँ से हटना चाहिए; उसके बिना दुनिया में शान्ति नहीं रहेगी, सुख नहीं रहेगा। उसी दृष्टि से इस जमाने में सार्वजनिक काम करने चाहिए और आज का सार्वजनिक काम याने समाज की रचना बदलने का ही काम है।

कांग्रेस के सेक्रेटरी श्री माधवनन्नायर यहाँ आये हैं। वे कांग्रेस में कुछ बदल करना चाहते हैं। उसकी कसौटी तो हम करेंगे। हम पूछेंगे, क्या भूमि का मसला केरल में हल हुआ ? भूमिहीनों को जमीन मिली ? गरीबों को राहत मिली ? यह नहीं हुआ, तो कांग्रेस टूटी, सब टूटे और देश की कमर भी टूटी ! देश के सामने यह एक समस्या है और उसका उत्तर देश को देना होगा। देश को सब राजनैतिक पार्टियों को इस सवाल की कसौटी पर कसना चाहिए। भूमिहीनता मिटाई गई तो हमारी रचना उत्तम है। यह हमारी परीक्षा है, सब राजनैतिक पार्टियों की भी परीक्षा है। (कोडरवाड, पालघाट, ११-६-'५७)

---

www.vinoba.in

पंचामृत

कल्याण-राज्य कहाँ जाकर पहुँचेगा ?

सरकार से हमें सहकार पर आना है। राज्य अच्छा वह, जो राज कम-से-कम करे। लोककल्याण-राज्य की एक कल्पना थी, वह बीत गयी। वह हमारी नहीं है। उसमें सब कुछ राज्य के करने के लिए हो जाता था। हम राज्य के पास करने के लिए कम-से-कम छोड़ना चाहते हैं। आखिर करने वाले कौन हैं? लोग ही तो हैं। राज्य करता है, यानी लोग करते हैं। सहकार के साथ एक उद्देश्य में जो मिल आये, वे लोग और उनका समाज। तो इस तरह समाज सब करता है। राज्य समाज के हाथों का एक यंत्र है। यंत्र ही है, मालिक नहीं है। लोककल्याण-राज्य, यानी लोगों का कल्याण-राज्य के लिए हो। तो यह उल्टी बात हो जाती है कि जैसे लोग न जानते हों, कल्याण को जानने का भी काम राज्य का हो और वह करे तभी हो! इस रास्ते से राज्य चाकर बनते-बनते मालिक बन जाता है। अधिनायक राज्य और लोक-राज्य में इस रास्ते बहुत अन्तर नहीं रह जाता। हम एक ध्रुव को भूलना नहीं चाहते हैं। वह यह कि जिसे शासन न करना पड़े, वह शासन अच्छा है। यानी राज्य का काम कार्मिक नहीं, नैतिक रह जाय। राज्य अंतःकरण के मानिन्द हो। लोग सभी तो अवयव हैं। राज्य अपने अलग हाथ-पैर बनाता है और फैलाता है, तो लोग अपनी सूझ-बूझ से हाथ-पाँव चलाने में असमर्थ होते और पर-मुखापेक्षी बनते हैं। इतिहास में यह बड़ी भूल होती रही है। राज्य ने कर्म को पकड़ा है, अकर्म को छोड़ा है। अकर्म की महिमा गीता ने बतायी है। उस मूल्य की पहचान से भारत का राज्य जब डिगा, तब कठिनाई ही हुई। करोड़ों-अरबों रुपया जुटा कर बड़ी योजनाएँ चलायी जा सकती हैं और लग सकता है कि बड़ा काम हुआ है। पर काम असल तो मानव-सम्बन्धों में विश्वास और मिठास बढ़ाना है। उनमें खटास पड़ती जाय और जहर खुलता जाय, तो समाज का कल्याण नहीं होता है। सुख महल में रहता है, यह किसीका अनुभव नहीं है। निर्माण सुख का करना है, महल खड़े करने से वह होता, तो बात क्या थी! इससे राज्य पर जो आयें, उनकी निगाह सीधे उद्योग और उत्पादन पर कम भी रहे, मानव-सम्बन्धों के सामंजस्य पर कम नहीं रहनी चाहिए। कर्तव्य मुख्य यहाँ है। उद्यम और उत्पादन की प्रवृत्ति तो हर मनुष्य में है। काम किये बिना कौन रह सकता है? हाथ कुछ-न-कुछ करेंगे ही। उनके पीछे लगा हुआ दिमाग रहे और मुहब्बत से भरा दिल रहे, यह असल बात है। इससे सरकार को हाथों का योगफल होना नहीं है। सिर्फ बहुमत का संगठन होना नहीं है, विवेक का प्रतिनिधि होना है। ... विवेक खुद नहीं करता, करते हुए हाथों को सिर्फ सही रखता है। और मुहब्बत भी कुछ नहीं करती, उन करते हुए हाथों को थकने से बचाती है। तो सरकार के पास इससे दूसरी तरह का और अलग, अधिक काम नहीं रहना चाहिए।

('जयवर्धन' से) —— —जैनेन्द्र कुमार

लाखों-करोड़ों के हित के लिए—

१९५५ में हमने यह अनुभव किया कि भूदान-आंदोलन से भारत के नैतिक पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति हो रही है। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ अनेक प्रकार की विषमताएँ भरी हुई हैं, शीघ्रता के साथ किसी प्रकार के सामान्य निर्णयात्मक पहलू पर पहुँचने की बात करना ठीक नहीं है, चाहे उसका आधार देखने में स्पष्ट ही लगे। इतना कहने के बाद में अब भी यह बात कह रहा हूँ कि भारतीयों के जीवन के संबंध में हमारा जो कुछ ज्ञान है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हमें बहुत ज्यादा प्रेरणा मिली। गहराई तक प्रविष्ट संपन्न आध्यात्मिक जीवन की आशा, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद तक प्रकाशहीन-सी दिखायी पड़ रही थी, पुनः प्रकाशवान प्रतीत होने लगी और भारत के लोग अधिक-से-अधिक नैतिक मूल्यों पर विचार करने लगे।

प्रतिदिन दस से पंद्रह मील तक की ग्रामीण क्षेत्रों की यात्रा के पश्चात् विनोबा भावे खेती करने वालों में उत्साह और निष्ठा की सृष्टि करते थे और श्रम के महत्त्व की बराबर चर्चा करते थे। जैसे गांधीजी ने अंग्रेजों से कहा था, वैसे ही विनोबा ने जमींदारों से कहा कि उनके अन्यायों और अत्याचारों से वस्तुतः उन्हींकी हानि होती है, न कि उनकी-जिन पर ये अत्याचार और अन्याय होते हैं!

विनोबाजी के नैतिक प्रभाव का अनुमान इससे ही किया जा सकता है कि उन्होंने कैसे-कैसे लोगों को अपनी ओर मोड़ लिया। जयप्रकाश जैसे समाजवादी नेता ने अपना जीवन भूदान और लोकतांत्रिक आधार पर अहिंसात्मक समाज के विकास के लिए अर्पित कर दिया है। विनोबाजी के सहायक के रूप में उन्होंने अनेकानेक युवकों को इस कार्य की ओर प्रवृत्त किया है और भूदान में प्राप्त भूमि के पुनर्वितरण तथा ग्रामदान में प्राप्त सैकड़ों गाँवों के पुनःसंगठन में अपने को लगा दिया।

न तो विनोबा, न जयप्रकाश ही यह मानते हैं कि कानूनी दृष्टि से भूमि-सुधार के रूप में भूदान का प्रयोग किया जा रहा है। इसके विपरीत उनकी यह मान्यता है कि ग्राम-समाज में प्रारंभ किया हुआ यह आंदोलन ऐसे वातावरण की सृष्टि करने में समर्थ होगा, जिसके फलस्वरूप उस विचारधारा का प्रसार होगा, जिसे गांधी-विचार धारा कहते हैं और जिसका उद्देश्य लोगों का हृदय-परिवर्तन है।

जो लोग यह मानते हैं कि कम्यूनिज्म का पराभव उससे भी प्रबल किसी विचारधारा से संभव है, उन्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस कृषकाय व्यक्ति के द्वारा संपूर्ण एशिया में ऐसी लोकतंत्रात्मक शक्ति का विकास होगा, जो कम्यूनिज्म को पछाड़ सकती है। विनोबाजी साफ कहते हैं कि हम कम्युनिस्टों की यह बात स्वीकार नहीं करते कि हिंसा के बिना कोई क्रांति हो ही नहीं सकती। वे कहते हैं कि हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत जैसे देश में, जिसकी सरकार का ढाँचा लोकतंत्र पर आधारित है, यह सर्वथा संभव है कि हिंसा का आश्रय लिए बिना मतदान की विधि से ही क्रांति की जा सकती है।

विनोबाजी कहते हैं कि जिस गांधीवाद ने हमें स्वराज दिलाया, उसे काल्पनिक और अव्यावहारिक कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। किन्तु इस समय तो उस पुराने देश, चीन को नवशक्ति-संपन्न करने में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् कम्यूनिज्म ने भी अपना सामर्थ्य प्रदर्शित किया है। यही कारण है कि बहुत से सेवक ऐसा कहने लगे हैं कि दोनों पद्धतियों के समन्वय की आवश्यकता है। वस्तु-स्थिति यह है कि ये दोनों सिद्धांत परस्पर अत्यंत विरोधी हैं और इनमें समन्वय हो ही नहीं सकता। दोनों के मतभेद मौलिक हैं। दोनों परस्पर एक-दूसरे के कितने विरोधी हैं, यह स्वतः स्पष्ट है।

भारत से प्रस्थान करने (१९५५) के पूर्ववाली रात्री में हमें राष्ट्रपति भवन में गांधीजी के जीवन पर एक फिल्म दिखायी गयी, जो उनके १९२९-३० के कार्य से संबद्ध थी। इस फिल्म में यह दिखाया गया था कि पुलिस की निरंतर लाठी-वर्षा के बावजूद भारत की महान् जनशक्ति किस प्रकार अनुशासित और अहिंसक बनी रही तथा ब्रिटिश वस्त्र के बहिष्कार की गांधीजी की योजना के कारण लंकाशायर के मिलकर्मचारियों के बेकार हो जाने के बावजूद जब गांधीजी इंग्लैण्ड गये, तो उन्हीं कर्मचारियों द्वारा गांधीजी का किस प्रकार उल्लासयुक्त हार्दिक अभिनंदन किया गया।

दर्शकों में हमारे अतिरिक्त ४०-५० आदमी रहे, जिनमें उस भारतीय काँग्रेस की कार्यसमिति के भी सदस्य थे, जिसके माध्यम से ही गांधीजी ने भारत को स्वतंत्र किया। कार्यसमिति के इन सदस्यों में से बहुतेरे उस फिल्म में भी दिखायी पड़े, जो उन दिनों युवावस्था में थे और अत्यंत निष्ठापूर्वक अपने महात्मा के नेतृत्व में और उनके निर्देश पर काम करते रहे। बाद में रात के भोजन के समय नेहरू ने गांधी के विरासत की चर्चा की और बताया कि किस प्रकार वह सारी जिम्मेदारी "हम पर और हमारे साथियों पर आ गयी है।"

मुझे याद है कि गांधीग्राम में और हैदराबाद की पाठशालाओं में काम करने वाले तथा ग्रामीणों के बीच काम करने वाले सेवक कितनी निष्ठा से संपन्न थे। मैं तो ऐसा समझता हूँ, उस समय जो निष्ठा और लगन वहाँ के सेवकों में देखी गयी, उसका विकास होता रहे, तो उससे भारतीय जनता की स्वतंत्रता और उसकी समृद्धि ही सुनिश्चित नहीं होगी, वरन् संसार के अनेक देशों के लाखों-करोड़ों लोगों का हित होगा।

—चेस्टर बौल्स

('न्यू डायमेन्शन ऑफ पीस' से)

——

www.vinoba.in

तमाम सृष्टि के साथ मौत का खेल !

मैं इतना बूढ़ा हो गया कि अब चिड़चिड़ा भी हो गया हूँ। मैंने अपने जीवन में बहुत-सी विचित्र वस्तुएँ देखी हैं। बहुत सारी भूलों और बहुतेरे अत्याचारों का भी मुझे सामना करना पड़ा। मैं नहीं चाहता कि मरने के पहले मुझे किसी प्रकार के भय और त्रास का सामना करना पड़े। यह ठीक है कि और लोगों की तरह अकेले मेरा कोई महत्त्व नहीं। लेकिन हम सब मिलकर महत्त्वहीन भी नहीं हैं। हम इस नाटक के पात्र हैं और नाटक का कोई भी एकाकी पात्र दुःख में परिसमाप्त होने वाले नाटक के प्रभाव से जिस प्रकार अछूता नहीं रह सकता, उसी प्रकार इस नाटक का कोई भी पात्र इसके भयावह आशंकित दुखदायी अंत के प्रभाव से बचने वाला नहीं है। मैं तो इस नाटक का सूत्रधार मात्र हूँ और आप लोग इसके पात्र हैं। आप पात्र भी हैं और दर्शक भी, क्योंकि जब किसी उदजन बम का विस्फोट होता है, तो आप स्वतः दर्शक की स्थिति से मरण की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वह स्थिति संपूर्ण विनाश की है। यह ऐसी निश्चित है कि उसमें संशय का कोई स्थान नहीं। इसे मानव की मृत्यु नहीं, वरन् मानवता की मृत्यु कह सकते हैं।

अब आइये, मैं आपको (नाटक के) कार्य-व्यापार की उस भूमिका पर ले चलूँ, जहाँ जाकर हम यही देखेंगे कि यह हमारे विनाश का कारण बनता है।

यह वसंत ऋतु है। इस समय बरफ पिघलती है और सरिताओं में जीवनी शक्ति का संचार करती है। रूस और अमेरिका में भी आज ऐसा ही वसंत है। हम यह क्यों न कहें कि संपूर्ण संसार इस वसंत के आगमन से उल्लास का अनुभव कर रहा है। वसंत में ही फूल खिलते हैं, किन्तु उन्हें किसी शीतयुद्ध या अन्य युद्धों का क्या पता ? उन निरीह फूलों को आज के इस आणविक युद्ध का भी क्या पता, जो बच्चे-बच्चे की जबान पर है ?

लेकिन सोचिये तो सही, उल्लास और यौवन के इस वसंत में, जब कि लोगों में एक प्रकार की मस्ती और लापरवाही घर कर लेती है, एक मधुमक्खी उनके कानों के पास आकर भनभनाने लगती है। वह भनभनाती ही रहती है। छत्ते की तमाम मधुमक्खियाँ उड़-उड़ कर फूलों का रस लेने आती हैं। किन्तु उनको ज्ञात होता है कि वे फूल विष भरे हैं, जिनका रसपान करने वाली मक्खियाँ इस लोक से कूच कर जाती हैं। हम यह भी देखते हैं कि हरी-हरी पत्तियाँ पेड़ से तोड़ कर खाने वाला हाथी पीड़ा से छटपटा रहा है और पास ही एक सुन्दर मृग मरा हुआ पड़ा है।

सागर में विष ही विष भर गया है और अपने को अत्यन्त सुरक्षित मानने वाला घोंघा भी भयाक्रांत हो गया है। मछलियों के झुंड के झुंड मृत पाये जाते हैं। और सागर की सतह पर जल में उछलती-तैरती मछलियाँ आज दिखायी भी नहीं पड़ती। इतना ही नहीं, नभ में सबसे ऊँचा उड़ने वाला गृद्ध विषाक्त वायुमंडल के कारण रह-रह कर बेचैन हो जाता है। वह बड़ी लालसा भरी आँखों से देखता है कि उद्यान में लोग टहलते-फिरते हैं और माताएँ बड़े प्रेम से पढ़ कर आने वाले बच्चों के लिए भोजन बनाती हैं।

किन्तु इन स्नेहशील माताओं को क्या पता है कि इस संसार में कुछ ऐसे भी हठधर्मी मूर्ख हैं, जो विश्व के भाग्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।

(अंग्रेजी से)　　　　—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

मानव-मानव के बीच ही निबटना है!

सारे संसार में विनोबाजी की ख्याति पिछले पाँच वर्षों के भीतर ही हुई है। विनोबाजी के संबंध की जानकारी अब भी लोगों को बहुत कम है, जब कि गांधीजी के संबंध में ऐसी बात नहीं थी। अभी हाल में उनके संबंध में जानकारी कराने वाली एक पुस्तक महाकवि टेनीसन के प्रपौत्र हैलम् टेनीसन ने लिखी है। टेनीसन ऐसा समझते हैं कि गांधीजी की अपेक्षा विनोबा कहीं अधिक कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति हैं। विनोबाजी के मन में किसीके प्रति आसक्ति की कोई भावना नहीं रह गयी। वे सबको समान दृष्टि से देखते हैं। इसके विपरीत गांधीजी में अंत तक भावुकता थी और उस प्रेमभावना को उन्होंने सदा पल्लवित रखा और उससे लाभान्वित भी हुए। गांधीजी लोगों को चारित्रिक दोषों के निवारण के लिए बराबर उपदेश करते रहे। गांधीजी की ही भाँति विनोबा भी अपना आंदोलन अत्यंत नाटकीय कौशल से संचालित करते हैं—यद्यपि यह अवश्य है कि विनोबाजी की प्रवृत्ति ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त करने की दृष्टि से संचालित नहीं होती। गांधीजी की ही भाँति वे मितव्ययी हैं। संपत्ति के रूप में उनके पास यदि कोई वस्तु है, तो वह है उनकी घड़ी, फौंटनपेन और उनका चश्मा ! विनोबाजी तो रेल से भी कभी नहीं यात्रा करते। वे गाँव-गाँव पैदल घूम कर जमींदारों को यही शिक्षा देते हैं कि अपनी जमीन का छठा भाग भूमिहीनों के लिए दो। गांधीजी की भाँति विनोबाजी के पीछे भी लोगों की बड़ी भारी जमात लगी रहती है, जिनमें कुछ लोग आदर्शवादी होते हैं, कुछ राजनीतिज्ञ होते हैं, कुछ सेवक होते हैं और कुछ भक्त होते हैं। इस दल में कभी-कभी राजा-महाराजा भी मिलते हैं। जिन लोगों ने राजनीतिक मोहमाया का परित्याग कर विनोबाजी के आंदोलन में अपने को लगा दिया है, उनमें मुख्य हैं, भारतीय समाजवादी दल के भूतपूर्व नेता श्री जयप्रकाश नारायण।

विनोबाजी ने यह भी सुझाव दिया है कि वर्तमान भारतीय संसद (प्रणाली) भंग कर दी जाय, क्योंकि वह बहुत वाक्छल में भरमा देने वाली है। विनोबाजी का प्रभाव अत्यधिक है। हिंदू विचारधारा को वे प्रभावित करते हैं। आज संपूर्ण एशिया में गांधीजी की ही भाँति उनकी प्रतिष्ठा होती है और यदि वे कुछ दिन और रहें, तो नैतिक आदर्शों के, उच्च जीवन के, निर्धनों के परित्राता के रूप में, सरकारों की अहंमन्यता भरी असंस्कृत प्रतिष्ठा के प्रतिरोधी के प्रतीक के रूप में उनको मान्यता प्राप्त होगी और कम्यूनिस्ट विचारधारा को उध्वस्त करने तथा जो लोग केवल ताकत के भरोसे कम्यूनिज्म को समाप्त करना चाहते हैं, उनके लिए नयी दिशा में विचारोत्तेजक के रूप में उनको मान्यता प्राप्त होगी। विनोबा ने एक बार कहा था कि पुलीस कोई सुधार का कार्य स्वयं सोचें और व्यवहार में लायें, ऐसा नहीं हो सकता। शेरों से भरे जंगल साफ करने के लिए भले ही उनका उपयोग हो, लेकिन यहाँ तो हमें मानव-समाज के साथ निबटना है।

जब किसी नयी विचारधारा का आविर्भाव होता है, तो उसका दमन नहीं किया जा सकता।

('स्पॉटलाइट ऑन एशिया' से)　　　　—गाय विंट

आदमी जगत् का केंद्र होगा !

अब सवाल यह है कि वह क्या रचना हो सकती है, जो इस आदमी को नीचे न रख कर केन्द्र में ले सके ? क्या वही रचना, अर्थ-रचना और समाज-रचना सही और सार्थक न होगी ? प्रश्न है कि वह क्या हो सकती है। राज्य का उसमें क्या होगा ? होगा ही वह, तो उसका रूप क्या होगा ? मुझे लगता है, क्रमशः राज्य यांत्रिक न रहेगा। वह स्थूल और भारी कम होता जायगा। आज की अमलदारी के रूप में नहीं, बल्कि अंतःप्राप्त दायित्वभाव के रूप में वह व्याप्त होगा। ऐसा यदि नहीं है, राज्य है और वह व्याप्त नहीं, केन्द्रित है, नैतिक नहीं, कार्मिक है, तो ऐसे राज्य के साथ अनिवार्य होकर युद्ध कैसे न लगा चलेगा, मैं नहीं समझ पाता। ऐसा राज्य, निहित स्वार्थ का दुर्ग हुए बिना रह नहीं सकता। उसे खर्च चाहिए और आय के साधन चाहिए। पूंजी चाहिए और मंडी चाहिए। महाजन उसे जरूरी होगा, उसी तरह गाहकजन जरूरी होंगे। राज्य क्या, वह एक लवाज़मा ही होगा। जरूरी होगा कि अमुक भूखंड के लोग उसके अपने हों और देशवासी कहलायें, उससे बाहर के लोग गैर हों और विदेशी समझे जायँ ! ऐसे देश-विदेश का, अपने-पराये का भाव मजबूत किये बिना राज्य कमजोर रहेगा ! बिलवर, यह सब मन में उठता रहता है और लगता है कि यह अर्थ-रचना, जो हर दो पड़ोसियों को एक हित में मिलाये, राज के लिए हो नहीं सकती। राज्य चाहे तो भी उसे सींच नहीं सकता। कारण, राज्य मशीन है और केन्द्र है और यह रचना इतनी आत्मिक और विकेंद्रित होगी कि केन्द्र स्वयं आदमी ही रहेगा। हर आदमी अपना केन्द्र और जग का केन्द्र, इस उधेड़बुन में मैं जिस नतीजे पर पहुँचा हूँ, वह वही सनातन है कि यज्ञ ही नियम है। शब्द तुम्हें अटपटा होगा। समझ न आता होगा। पर यज्ञ, यानी तुम्हारा क्रॉस ! **व्यक्ति में यज्ञ है, तो उससे समाज बनता है। नहीं है, तो शोषण होता है। सामाजिकता निरे गिरोह हो रहने में नहीं है। डाकुओं का गिरोह जैसा पक्का होता है, वैसा दूसरा न होता होगा। व्यसन में मिलाने की शक्ति है। गुट और समूह उस पर जल्दी जुटता है। पर समूह समाज नहीं है। यानी दलों पर चलने वाले लोकतंत्र से बहुत आशा नहीं हो सकती, राजनीति से ही बहुत आशा नहीं हो सकती। कारण वह मजबूर है कि व्यक्ति को न गिने, गुट को गिने !**

('जयवर्धन' से)　　　　—जैनेंद्रकुमार

www.vinoba.in

ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—जमीन की प्रायवेट ओनरशिप (खानगी मालकियत) नहीं चाहिए, यह कहना क्या गलत नहीं है ? फिर तो उस हालत में किसी भी चीज की ओनरशिप नहीं मानी जायगी। पत्नी और लड़कों पर भी मालिकी नहीं रहेगी !

विनोबा—यह सुन कर हमको लोगों की दया आती है और बहुत दुख होता है। पत्नी और बच्चे, यह कोई प्रॉपर्टी है ? यह कल्पना ही खराब है। लड़का किसका है ? कहता है, 'मेरा' है ! वह तो परमेश्वर का है ! परमेश्वर की वह मूर्ति है। बच्चा पैदा हुआ। आप मर गये। तो बच्चे के मालिक कैसे हुए ? पत्नी की भी परवाह नहीं, बिल्कुल लापरवाही से चले जाते हो ! इस तरह कोई मालिक अपनी संपत्ति को छोड़ कर जायेगा ? दरअसल यह भाई पूछना चाहता है कि माता-पिता, पति-पत्नी आदि परिवार रहेगा या नहीं ? तो, कुटुम्ब को हम अच्छी तरह रखना चाहते हैं। मालकियत के खयाल से नहीं, सेवा के खयाल से। कुटुम्ब की सेवा करना हरेक का कर्तव्य है। परंतु हम चाहते हैं, कुटुम्ब बड़ा बने। पड़ोसी के घर में लोग भूखे हैं और हम मीठा खाते हैं, तो यह शोभा नहीं देता। फिर एक-साथ भी क्यों रहते हो ? जंगलों के जानवरों के मुआफिक अकेले रहो। पत्नी-लड़कों की विशेष सेवा करनी है, तो आप कर सकते हैं। परंतु उसके लिए मालकियत की क्या जरूरत है ?

प्रश्न—क्या प्रायवेट ओनरशिप (खानगी मालकियत) के बिना समाज बन सकता है ?

विनोबा—समाज के लिए प्रायवेट ओनरशिप की जरूरत ही नहीं है, खानगी सेवा की जरूरत है। 'प्रायवेट सेक्टर' के बिना समाज नहीं टिकेगा। प्रायवेट सेक्टर याने व्यक्तिगत जिम्मेदारी। लड़के की सेवा करनी है और दस आदमियों पर उसको सौंप दिया, तो क्या अच्छा पालन होगा ? नहीं। तो जिम्मेदारी एक की ही होनी चाहिए, तभी अच्छा पालन हो सकेगा। लड़का गुरु के घर जाता है। गुरु प्यार करता है, पढ़ाता है, ज्ञानी बनाता है। यह लड़की हमारी सेवा करती है, तो वह बीमार न पड़े, इसका हम खयाल रखते हैं। पर इसके लिए मालकियत की क्या जरूरत है ? तो प्रायवेट ओनरशिप की जरूरत नहीं है। जरूरत है, 'परसनल रिस्पॉन्सिबिलिटी' (व्यक्तिगत जिम्मेदारी) की। १०-१५ प्रधान मन्त्री हम मुकर्रर नहीं करते हैं। एक ही व्यक्ति प्राइम मिनिस्टर होता है, क्योंकि वह जिम्मेदार होता है। व्यक्तिगत मालकियत के अलावा समाज नहीं चलेगा, यह भास मात्र है। 'परसनल प्रॉपर्टी', 'ओनरशिप' यह एक बात है और 'परसनल रिस्पॉन्सिबिलिटी' यह दूसरी बात। यह फरक ध्यान में लेना होगा।

प्रश्न—जमीन की मालकियत नहीं रहेगी, तो जमीन पर जो लायबिलिटीज़ (कर्ज) वगैरह हैं, उनका क्या होगा ?

विनोबा—वे सब लायबिलिटीज़ वगैरह समाज की बनेंगी। परिवार जब एक रहते हैं, तब क्या होता है ? लॉयबिलिटीज़ और ऐसेट्स (संपत्ति) सब एक हो जाते हैं। उसी तरह जहाँ समूह में जमीन आयेगी, वहाँ उस समूह की जिम्मेवारी होगी कि कर्जा वगैरह हो, तो उसका स्वीकार करे। बहुत सारे काम भी सामूहिक ही होंगे, जैसे आज शादी के लिए जिंदगी भर किसान कष्ट उठाता है, परंतु ग्रामदान में समूह यह जिम्मेवारी उठायेगा। इस तरह ग्रामदान में ऐसेट्स और लायबिलिटीज़ की जिम्मेवारी समूह उठाता है।

प्रश्न—हरेक के पास इकॉनामिक होल्डिंग (आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त जमीन) रहना असंभव है। इससे क्या जमीन की भूख नहीं बढ़ेगी ?

विनोबा—हम जमीन की भूख की चिंता नहीं करते। हम भूख की चिंता करते हैं। हम नहीं जानते कि कोई मिट्टी खाने की इच्छा करता है ! इच्छा रखता है, अन्न की। तो राष्ट्र की जिम्मेवारी है कि हरेक को अन्न दे या काम दे। इंग्लैंड में आज भी बेकारी है। मशीनरी से काम लेते हैं, तो सबको काम नहीं मिलता। जो बेकार हैं, उनको सरकार 'डोल' देती है। यह हक माना जाता है कि सरकार डोल दे या काम दे। यहाँ की सरकार तो डोल नहीं दे सकती, क्योंकि यह दरिद्रों की सरकार है। इसलिए यह जिम्मेदारी गाँवों को लेनी चाहिए। हरेक को काम मिले, ऐसी योजना गाँवों में हो सकती है। इस वास्ते सवाल जमीन की भूख का नहीं, काम की भूख का है। हिंदुस्तान की क्षुधा मिटानी है, तो हरेक को काम देना होगा। काम का सर्वोत्तम एकमात्र साधन है जमीन। सारे देश में ही आज अनइकॉनामिक होल्डिंग है। इस वास्ते जो है, वह बाँट कर खाना चाहिए। पूर्ति के लिए धंधे भी देने होंगे। सप्लीमेंटरी (पूरक) धंधों के बिना केवल खेती से काम पूरा नहीं होगा। लेकिन सबको अनाज की जरूरत है, इस वास्ते जैसे हरेक की नाक में सीधी हवा जाती है, वैसे हरेक के घर में अनाज होना चाहिए।

प्रश्न—कुछ लोग आलसी होते हैं, तो ग्रामदान होने पर उनका उत्साह कैसे बढ़ेगा ?

विनोबा—जब समूह होता है, तो उत्साह आता ही है। परिवार में सब काम करते हैं, तो जो आलसी होगा, उसको भी उत्साह आता है। तो परिवार बड़ा होने पर उत्साह बहुत बढ़ेगा। दूसरों के लिए काम करने से उत्साह बढ़ता है, यह मनुष्य का लक्षण है। हमारे गाँव में हमारे घर में ही कटहर का पेड़ था। जब कटहर होते थे, तो हमारे पिताजी हमसे कहते थे कि पड़ोसी को थोड़ा-थोड़ा बाँट कर आओ। हमको बहुत आनंद आता था बाँटने में। यह अनुभव हरेक बच्चे को होता है। पर यह तो मनुष्य का स्वभाव ही है, जो बच्चों में भी दीख पड़ता है। गाँव में कोई आलसी रहा, तो उसको मारेंगे-पीटेंगे नहीं, परंतु गाँव की उस पर नजर रहेगी। गाँव में सबको अलग-अलग जमीन न दी गयी, तो भी आलसी के लिए स्पेशल केस मान कर एक जमीन का टुकड़ा उसको स्वतंत्र रूप से देंगे ! आलसी है, इस वास्ते पानी की सुविधा भी कर देंगे और उसको कहेंगे, अब तू इस पर काश्त कर और तू ही खा। लेकिन उस पर उसकी मालिकी नहीं होगी, नहीं तो वह बेच डालेगा या रेहन रखेगा। आलस से तो कितने ही लोगों ने अपनी जमीन खोयी है। तब उसको कुछ-न-कुछ काम करना ही पड़ेगा। इस तरह तालीम के खयाल से आलसी को उत्साहित करने के लिए उपाय करेंगे।

प्रश्न—केरल में पुराने जमाने में सामूहिक परिवार थे, परंतु वे टूट गये हैं। अब आप ग्राम-परिवार कहते हैं, तो वे कैसे हो सकते हैं ?

विनोबा—सोचना चाहिए कि जिन कारणों से परिवार टूटे, वे कारण ग्रामदान में नहीं हैं। उसमें तो मालकियत की बात थी। चार भाई एकत्र रहते थे, परंतु अलग-अलग मालकियत मानते थे। कानून भी अलग होने के लिए अनुकूल था। भाई-भाई पर अधिकार मानते थे। व्यक्तिगत मालिकी मानने की बात थी। इसलिए सामूहिक परिवार टूटे हैं। सामूहिक परिवार तो सारे देश में ही थे, पर वे भी टूटे। बिहार में आज भी टूट रहे हैं। 'सीलिंग' के कानून से वे डरते हैं और जमीन आपस में बाँट रहे हैं। अलग-अलग मालकियत कर रहे हैं। लेकिन ग्रामदान में व्यक्तिगत मालकियत टूटती है और फिर उसको कानून से भी बल मिलेगा, याने ग्रामदान के गाँव में ऐसा कानून बनेगा कि व्यक्तिगत मालिकी मिट गयी। लोग स्वयं मालिकी मिटाते हैं, तो उस पर कानून मोहर लगायेगा। जैसे उड़ीसा में किया है और अब तमिलनाड में होने वाला है, याने सरकार कबूल करेगी कि लोगों ने मालकियत छोड़ दी है। इस तरह से ग्रामदान में लोग हायर लेवल (उच्च स्तर) पर एकत्र होंगे। पहले की सामूहिक परिवार की एकता लोअर लेवल (निम्न स्तर) पर रक्त-संबंध के कारण थी। वहाँ अधिकार होता है। ग्रामदान में वह बात नहीं। आपस-आपस में बनता नहीं, तो मेरा जमीन का टुकड़ा अलग कर दो, मेरा हक दे दो, यह बात ग्रामदान में नहीं चलेगी। सब मिल कर एक गाँव, मालकियत गाँव की, किसीका हक नहीं, अपनी बुद्धि से मालकियत छोड़ते हैं। लेकिन सामूहिक परिवार में समूह लादा हुआ था। वह बंधन था। यह मुक्ति है। सबने मुक्त-भाव से तय किया कि यह मालकियत का बोझ पटक देंगे। इसलिए उसकी और इसकी तुलना नहीं हो सकती। सामूहिक परिवार में २५-३० आदमियों की रसोई एक जगह करनी पड़ती है। पक्षपात, संशय, यह सारा वहाँ होता है। इसमें एक जगह रसोई करने का बंधन नहीं है। पक्षपात होने का भी सवाल नहीं। सब घरों को एक नहीं करना है। इतना ही होगा कि ग्राम की आर्थिक पद्धति बदलेगी और सामाजिक एकता होगी। सामूहिक कुटुम्ब-पद्धति हम लादना नहीं चाहते। वहाँ कौटुम्बिक स्वातंत्र्य रहेगा।

(चित्तूर, २८-५; वडकांचेरी, २५-५) ——

शक्ति का अपव्यय

चुनाव एक के बाद एक आते हैं और उनके बाद चुनाव-अधिकरणों और याचिकाओं की प्रभावी प्रक्रिया चलती रहती है ! चुनावों में ऐसा कितना समय बर्बाद करते हैं। मैं सर्वात्मना जनतंत्र के पक्ष में हूँ, किन्तु अगर जनतंत्र इस प्रकार संगठन को कुचल देता है, तो वह पद्धति गलत है। आखिरकार जनतंत्री तरीका आप किसी पर थोप नहीं सकते। इसकी आपको उपयोगिता सिद्ध करनी होगी। अगर आप इसके लायक नहीं हैं, तो जनतंत्र का कोई दूसरा रूप अपनाना होगा।

(नयी दिल्ली, १ जून, '५७) —पं० नेहरू

www.vinoba.in

ग्रामदान-समाचार

श्री अच्युतरावजी पटवर्धन ने ता० २५, २६ और २७ मई को रत्नागिरी जिले की प्रचार-यात्रा की। ता० ३० को कुलाबा जिले में गये। उनकी इस यात्रा में 'नवखार ग्राम' का ग्रामदान होना चाहिए, ऐसा वहाँ के कार्यकर्ता श्री मारुतिराव खोत ने सोचा और सर्वोदय-योजना के मुख्य केंद्र मुडकोली में आकर उन्होंने कहा—"आज रात नवखार आइयेगा, कुछ विशेष घटना घटेगी!" कार्यकर्ताओं के साथ श्री अच्युतरावजी नवखार गये। श्रीराम मन्दिर में सब लोग इकट्ठा हुए थे।

प्रार्थना के बाद श्री अच्युतरावजी का स्वागत करते हुए श्री मारुतिराव ने 'नवखार' का ग्रामदान जाहिर किया। 'नवखार' इस इलाके के प्रमुख गाँव में से एक गाँव है।

—बिलासपुर जिले के लोरमी इलाके में गुनापुर ग्राम १९ जून को ग्रामदान में प्राप्त हुआ है और चेचानडीह के ग्राम-दान होने की पूर्ण संभावना है।

—सर्वोदय-सम्मेलन के बाद कालडी से निकली हुई ७ सदस्यों की एक पदयात्रा-टोली ने ३५० मील की यात्रा पूरी की। उनको मैसूर जिले में एक ग्रामदान मिला। गाँव में ४७ परिवार हैं और जमीन करीब २०० एकड है। ——

अखिल भारत भूदान-पदयात्री दल उत्तर प्रदेश में—

२ फरवरी, १९५६ को कन्याकुमारी से अखिल भारत पदयात्रा का प्रारंभ हुआ था। इस टोली ने केरल, तमिलनाड, मैसूर, आंध्र, हैदराबाद, महाराष्ट्र, बम्बई, गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश में करीब ५००० मील की पदयात्रा करके उत्तर प्रदेश में २२ मई १९५७ को प्रवेश किया।

२२ मई से ३१ मई तक देहरादून तथा सहारनपुर में पदयात्रा हुई। १ जून से मुजफ्फरनगर, मेरठ और बुलन्दशहर जिले में यात्रा चली। आगे अलीगढ़, आगरा, ग्वालियर, झाँसी, हमीरपुर, बाँदा, इलाहाबाद, बनारस, मिर्जापुर होते हुए दल २० अगस्त को रीवाँ पहुँचेगा। पदयात्री दल में ७ व्यक्ति हैं।

उत्तर प्रदेश गांधी-स्मारक-निधि, सेवापुरी —रघुनाथ कौल, का० मंत्री

ढोलबज्जा की भूमिहीनता कैसे मिटी ?

पूर्णिया जिले के फारबिसगंज थाने के ढोलबज्जा गाँव में गत १८ अप्रैल को भूदाताओं द्वारा दान की हुई ज़मीन का ब्यौरा न देने के कारण वैसे ही उस दान की भूमि का वितरण किया गया था। फलस्वरूप भूदान-कार्यकर्ताओं को पीटा गया था। बाद में गाँव के लोगों ने क्षमायाचना की। अब ढोलबज्जा में ११ सदस्यों की ग्रामोदय-समिति का गठन हुआ है। समिति ने १५ जून को ७६ भूमिहीन परिवारों में करीब १२० एकड़ भूमि वितरित करके गाँव की भूमिहीनता मिटायी! समिति द्वारा आसपास के गाँवों में भी करीब ६८ एकड़ भूमि का वितरण हुआ। आसपास के गाँवों की भूमिहीनता मिटाने का काम समिति अपने हाथ में ले चुकी है।

—ता० २६ मई को रानीपतरा, सर्वोदय-आश्रम में समस्त भूदान-प्रेमियों की एक महत्त्वपूर्ण बैठक श्री वैद्यनाथप्रसाद चौधरीजी के नायकत्व में हुई। तय हुआ कि वितरण का काम अधिक जोर-शोर से करना है। बैठक में कालडी-सम्मेलन की जानकारी श्री चौधरीजी ने दी।

संवाद-सूचनाएँ :

'मंगल प्रभात' साप्ताहिक

पू० गांधीजी की विचारधारा के अनुसार चलने वाली एक साप्ताहिक पत्रिका 'मंगल प्रभात' नाम से 'गांधी हिन्दुस्तानी-साहित्य-सभा, दिल्ली'की ओर से प्रकाशित होती है। आचार्य श्री काकासाहब कालेलकरजी इसके संपादक हैं। इस साप्ताहिक में गांधी-विचारधारा के अलावा नये ज्वलन्त प्रश्नों पर विचारपूर्ण लेख और उच्च कोटि के साहित्यिक लेख प्रसिद्ध होते हैं। सालाना चंदा पाँच रुपया है। हरिजन- कार्य करने वाली संस्थाएँ तथा हरिजन-सेवक आधा चंदा देकर ग्राहक बन सकते हैं।

दिल्ली में 'भूदान-साहित्य' प्राप्त करने का स्थान

दिल्ली में राजघाट के पास, गांधी-हिन्दुस्तानी-साहित्य-सभा में हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, वर्धा के साहित्य के अलावा हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं में गांधी-साहित्य, भूदान-साहित्य और दूसरी रचनात्मक प्रवृत्तियों का साहित्य मिलने की व्यवस्था हुई है।

गांधी-हिन्दुस्तानी-साहित्य-सभा, सन्निधि, राजघाट, नयी दिल्ली —व्यवस्थापक

अंग्रेजी 'भूदान' साप्ताहिक

हमारे पाठकों को स्मरण ही होगा कि १८ अप्रैल '५६ से पूना से अंग्रेजी में 'भूदान' साप्ताहिक पत्र निकल रहा है। देश-विदेश के अंग्रेजी पढ़ने वालों के लिए इसमें कितनी महत्त्व की सामग्री रहती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। विनोबाजी के भाषण अंग्रेजी अनुवाद के रूप में इसीके द्वारा प्रकट होते हैं। कई अंग्रेजी पत्रों को भी इससे बड़ी सुविधा हुई है और उन्होंने अपने पत्रों में अग्रलेख भी उस आधार से लिखे हैं। भूदान-ग्रामदान संबंधी अधिकृत सामग्री, सामयिक महत्त्व-पूर्ण टिप्पणियाँ आदि इसकी विशेषताएँ हैं। खेद है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्र की ग्राहक-संख्या बहुत ही कम है। हम अपने पाठकों से अपील करेंगे कि वे इसके भी प्रचार में ज्यादा से ज्यादा सहयोग दें एवं अंग्रेजी के पाठकों तक इसको पहुँचायें। —सं०

इसकी जानकारी इस तरह है :

संपादक : श्री धीरेन्द्र मजूमदार : श्री पु० ह० (रावसाहब) पटवर्धन

प्रकाशक : अ० भा० सर्व-सेवा-संघ

चंदा : सालाना छः रुपये, एक प्रति दो आना

पता : व्यवस्थापक—अंग्रेजी "भूदान" ३६१ सदाशिव पेठ, पूना २ (बंबई राज्य)

प्रकाशन समाचार : निम्नांकित पुस्तकों के नये संस्करण निकले हैं :

(१) भूदान गंगा : खण्ड १ (द्वितीय सं०)	विनोबा	पृष्ठ २८८	मूल्य	१॥)
(२) भूदान गंगा : खण्ड २ (द्वितीय सं०)	विनोबा	३२०		१॥)
(३) सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र (पंचम सं०)	शंकरराव देव	५६		।)
(४) बुनाई (द्वितीय सं०)	दत्तोबा दास्ताने	४००		३)
(५) कताई शास्त्र (द्वितीय सं०)	सत्यन्	३००		२)

—अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

ग्राहकों व एजेंटों से—

'भूदान-यज्ञ' के निम्न अंकों की हमें आवश्यकता है। जिनके पास ये अंक शेष हों, वे यहाँ भिजवाने की कृपा करें। अंक प्राप्त होने पर उनका मूल्य व डाक-व्यय भेज दिया जायगा।

वर्ष	अंक	तारीख	वर्ष	अंक	तारीख
१	१४	१२ जनवरी ५५	१	३१	२० मई ५५
१	२५	१ अप्रैल ५५	२	२६	३० मार्च ५६

—व्यवस्थापक

श्री विनोबाजी का और श्री वल्लभस्वामीजी का डाक-तार का पता :
मार्फत : सर्व-सेवा-संघ, पो० परली PARLI (PALGHAT : KERAL)

विषय-सूची

१. एकादश व्रतों के मौलिक साधक : बालक !	महात्मा भगवानदीन	१
२. विश्वशांति का शांति-पुंज !	विनोबा	१
३. भूदान और उसके आलोचक !	—	२
४. क्रान्तिकारी योजना	—	२
५. सर्वोदय के बिजली-घर !	विनोबा	३
६. क्रांति के बढ़ते कदम	धीरेन्द्र मजूमदार	५
७. आपको पारसमणि बनना होगा !	विनोबा	६
८. सर्वोदय की दृष्टि : लोकमत जाग्रत करने में शक्ति लगायें	दादा धर्माधिकारी	६
९. जिले-जिले के निवेदकों से—	सिद्धराज ढड्ढा	६
१०. भूदान-आंदोलन में नगर पद-यात्रा का महत्त्व	नारायण देसाई	७
११. दया की दासी नहीं, रानी बनाना है !	विनोबा	८
१२. पंचामृत	—	९
१३. ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी	विनोबा	११
१४. सूचनाएँ, समाचार आदि	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण-प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी, टे० नं० १२८५

www.vinoba.in